स्वामी शंकराचार्य



सृष्टि का इतिहास

मूल्य ।-)

अनुवादक,
...भवानन्द "शान्त"



ओ३म्

सृष्टि का इतिहास।

(उत्तरार्द्ध)

स्वामी शंकराचार्य्य।

इनका समय भी किसी ऐतिहासिक के समीप विवाद-शून्य झगड़े से ख़ाली नहीं है। न तो अंग्रेज़ी इतिहासवेत्ता इस विषय में सहमत हैं और नहीं संस्कृतज्ञ विद्वान। हमें आश्चर्य्य है कि एक ऐसे प्रसिद्ध संशोधक एवं परिवर्त्तन करने-वाले घटनाचक्र के विषय में इतनी भूल क्यों है। सन् १८८३ के "थ्यासोफ़िस्ट" में लिखा है कि "हमें अत्यन्त खेद है कि इस महात्मा शङ्कराचार्य्य की जन्म तिथि का ठीक पता नहीं चल सका कि ये किस समय में हुए। कुछ लोग तो इनको ईसासे २०० वर्ष पूर्व बतलाते हैं और कुछ लोग सन् १००० ईस्वी में पहुँचते हैं, किन्तु कुछ लोग आठवीं सदी में भी मानते हैं। इस विषय में "विलसन, कोलब्रुक, राम-मोहन राय, यज्ञेश्वर शास्त्री, एवं पण्डित जयनारायण तर्क पञ्चानन आदि सब की सम्मति तो यह है कि स्वामी शङ्कराचार्य्य इसी आठवीं सदी में हुए हैं"

कुछ लोग इससे भी बढ़ कर सन् ११०० ईस्वी अथवा १४०० ईस्वी से भी आगे नहीं बढ़ते। महाशय रमेशचन्द्र दत्त

ने भी प्रायः इन्हीं का अनुकरण करते हुए सन् ११०० ही नियत किया है।

माननीय डाक्टर हण्टर महाशय लिखते हैं कि, इस युग में जितने भी महा पुरुष उत्पन्न हुए हैं उनमें सब से पहला बिहार का एक ब्राह्मण "कुमारिलभट्ट" था। इसी का एक प्रसिद्ध शिष्य शङ्कराचार्य्य* था जिसके समय से प्रामाणिक इतिहास आरंभ होता है। शंकर स्वामी मलाबार में उत्पन्न हुआ और समस्त भारत में प्रचार करता फिरा। काश्मीर तक गया, और अन्त को हिमालय पर्वत पर केदारनाथ नाम स्थान पर ३२ वर्ष की आयु में परलोक गमन किया। वेदान्तियों के सम्प्रदाय-सिद्धान्त-को वर्त्तमान रूप में उपस्थित करना, उसे जातीय धर्ममें प्रविष्ट करना, उन्हीं का काम था, कहना नहीं होगा कि उसके बाद जो आठ शताब्दियें व्यतीत हुईं और उन शताब्दियों में हिन्दू वाद में जो धार्मिक सम्प्रदाय स्थापित हुआ, उस की नीव एक वैयाक्तिक ईश्वर के विश्वास पर पड़ी। कोई चाहे किसी उच्च कुल में

---

*.डाक्टर महाशय का यह कहना ठीक नहीं है कि शङ्कराचार्य्य कुमारिल का चेला था। ऐसा नहीं है और संभव नहीं है। क्योंकि शङ्कराचार्य्य गोविन्द गौड पादाचार्य का शिष्य था, जैसा कि उसने स्वयं अपने वेदान्त भाष्य की समाप्ति पर कहा है। इसके अतिरिक्त कुमारिल का सिद्धान्त भी शङ्कराचार्य्य के विरुद्ध था, किन्तु गौड़पाद इनके मत से सहमत थे अथवा शङ्कराचार्य्य गौड़पाद के मतानुयायी थे ऐसा ही उनकी कारिकाओं से विदित होता है।

हो अथवा सामान्य वंश से, शङ्कर प्रायः सबको शिक्षा देता था। इस लिए एक जातीय धर्म एवं ब्राह्मण सम्प्रदाय उनकी आयु भर के परिश्रम का फल है।

(भारत का संक्षिप्त इतिहास पृष्ट १५३)

बात वस्तुतः यह है कि शङ्कराचार्य जी द्रविड अर्थात् मलाबार में उत्पन्न हुए और गोविन्द गौड़पादाचार्य के शिष्य हुए। इनका शास्त्रार्थ प्रथम बौद्ध मतानुयायियों से हुआ और अन्त तक इस मत के खण्डन में तत्पर रहे। उनके उपदेश से शैवमत* का प्रारंभ हुआ एवं बौद्ध मत का

---

*—वस्तुतः शैव एवं शाक्त्यादि मत शङ्कर स्वामी से ही नहीं बल्कि बौद्ध एवं चारवाक मत से भी पुराने हैं। नास्तिक चारवाक मत के श्लोकों में जहां वाम मार्ग की कुलीलाओं का खण्डन मिलता है, वहां शैवमत की भस्मादि लीलाओं का भी तिरस्कार पाया जाता है। इत्यादि बातों से एक इतिहासवेत्ता बड़ी आसानी से समझ लेता है कि चारवाक तथा बौद्ध मत की उत्पत्ति से पूर्व शैव मत का बीज बोया जा चुका था। इसके अतिरिक्त शङ्कर स्वामी के माधव जीवन चरित्र से भी पता लगता है कि शैवमत के आचार्यों से भी शास्त्रार्थ करके शङ्कराचार्य ने उनको परास्त किया था। किन्तु उस समय शङ्कर मतानुयायियों ने शङ्कराचार्य को शिव का अवतार मान लिया अथवा निश्चित किया, किंवा शैव मतानुयायियों ने ही शङ्कर से बचने के लये उसे स्तुति रूप से शिवावतार स्वीकार किया; तब शङ्कर मत शैवमत के विरुद्ध कुछ न कर सका बल्कि उसे प्रकारान्तर से शैव

हास। समस्त देश में वे अपने मत का प्रचार—उपदेश करते रहे। दक्षिणी भारत के मलाबार प्रदेश से कश्मीर एवं नैपाल तक धर्मोपदेश के लिये भ्रमण किया।

इनके प्रचार से बौद्धमत में बहुत बड़ा कोलाहल मच गया, और झुंड के झुंड इनके मतमें आने आरंभ होगये। अन्त को बहुत से राजा महाराजा भी इस धर्म के पोषक बने और यह सब कुछ करके, आर्य्यवर्त्त के चारों कोनों में चार मठ स्थापित किये। उत्तर में जोषी मठ, दक्षिण में शृंगेरी मठ, पूर्व में गोवर्धन मठ, एवं पश्चिम में शारदामठ की नीव डाली। अन्त को ३२ वर्ष की आयु भोगकर केदार नाथ धाम में दो बौद्धों ने अर्थात् असितव गुप्त एवं असिनिवेश ने जो इसी प्रयोजन के लिये कुछ काल पूर्व उनके चेले बन गये थे—किसी प्रकार का विष दे दिया, जिस से उनकी भूख कम होकर छः मास तक रोगी रहे और अन्त में इस भौतिक शरीर का परित्याग कर दिया।

जिस तरह पर कि सिकन्दर, सिसरो, अपलोनिस, एवं ईसा का जीवन लिखने वालों ने इनको ईश्वर बना दिया है, ठीक उसी प्रकार शङ्कर का इतिवृत्त लिखने वालों ने इन महाराज को भी शिवका अवतार निश्चित कर दिया है। इनकी जन्म-भूमि के विषय में भी कुछ २ विवाद है। आनन्दगिरि

मत का पोषक बनना पड़ा। इसी पोषक पन में शङ्कर मत को शैवमत का प्रचारक संशोधक—बल्कि संस्थापक बना दिया। यही कारण प्रतीत होता है कि पण्डित जी ने ऐसा लिखना उचित समझा।

अनुवादक

महाशय !चिदाम्बरपुर एवं माधव जी केलति तथा विजयेश्वर शास्त्री कालपी बतलाते हैं, और कुछ लोग शालिग्राम ज़िला करनाल कहते हैं, पर वास्तव में उनकी जन्म-भूमि वही है जो माधव जी ने लिखी है अर्थात् केलति। अन्य लेखकों ने वस्तु तत्त्व पर विचार न करते हुए केवल कल्पना मात्र से काम लिया है।

अब हम निम्न लिखित हेतुओं से शङ्कर स्वामी के विषय में विवेचना करके एक ऐतिहासिक समय निश्चित करते हैं।

(क) बौद्धमत ईसा से ५५० वर्ष पूर्व प्रारंभ हुआ और ईसा से २०० वर्ष पूर्व मौर्यवंश के ह्रासके साथ २ इसकी भी अवनति होने लगी। लैथब्रिज, महाशय ने लिखा है कि "बौद्धमत वैसे तो १२ वीं सदी तक अर्थात् १३०० वर्ष से भी अधिक भारत-वर्ष में रहा पर सच यह है कि मसीह से २०० वर्ष पूर्व से ही इसमें कमी होना आरंभ हो गया था। मौर्य—वंश के अस्त होते ही समस्त भारत में ब्राह्मणिक धर्म में पुनः जीवन संचार होने लगा। कन्नौज आदि के अधिवासियों ने तो इस पुरोहिती धर्म से बाहर कभी पाँव रक्खा ही न था; किन्तु अब अन्य प्रान्तों-नगरों के रहने वाले भी एक २ करके अपने पहले धर्म की ओर—जिसका रूप अब कुछ २ बदल गया था—पुनः झुकने लगे।

(भारत का संक्षिप्त इतिहास पृ० ३७)

अतएव यही अथवा इसी के आस पास शङ्कराचार्य जी का समय है। क्योंकि यह बात सबको विदित है कि बौद्ध

मत को परास्त करने वाले सब से पहले शङ्कर स्वामी ही हुए हैं।

(ख) स्वामी शङ्कराचार्य की रची हुई तीनों पुस्तकों अर्थात् शारीरक भाष्य, उपनिषद् भाष्य, एवं गीता भाष्य में मुसलमानों और उनके मत का विचार तक नहीं पाया जाता, हालांकि सन् ६३६ ईस्वी से ही मुसलमानों के भारत पर आक्रमण होने लग चुके थे, और प्रजा की शान्ति सर्वथा भङ्ग हो चुकी थी। अतः इसमें रत्ती भर भी सन्देह नहीं कि शंकराचार्य मुसलमानों के आक्रमणों से बहुत पहले हुए हैं न कि बाद में। क्योंकि मुसलमानों के हमलों में असंभव था कि इतनी स्वतंत्रता एवं निर्भीकता से अपने विचारों का प्रचार कर सकते।

(ग) ८ वीं, ९ वीं, १३ वीं, अथवा १४ वीं शताब्दियों में निम्न लिखित ऐतिहासिक व्यक्तियें, हुई हैं यथा महमूद ग़ज़नवी, अबूरेहां, भास्कराचार्य, आनन्दपाल, राजा हर्ष, सायण पृथिवीराज, कवि चन्द्रवर्दाई, जयदेव, बोपदेव, रामानुज, तैमूर कल्हण पण्डित आदि २ किन्तु इनमें से किसीने भी शंकरस्वामी को अपना सम कत्त नहीं लिखा और नहीं स्वयं शंकराचार्य ने इनमें से किसी का उल्लेख किया है। इससे विदित होता है कि वे इन सदियों में नहीं हुए, वल्कि इनसे बहुत पहले हुए हैं। इनमें से यतः समस्त हिन्दू ऐतिहासिक शङ्कर स्वामी को बौद्ध मत का विध्वंसक एवं अपने से पहले उत्पन्न हुआ बतलाते हैं।

(घ) पारसियों के धर्म पुस्तक में यूनान निवासी महान् सिकन्दर के इतिवृत्तों—हालात-में (जो उनका देवदूत हुआ है)

लिखा है कि जब वह भारत में आया तो उस समय शङ्कराचार्य नामी एक आर्य मत का उपदेशक अपने धर्म—प्रचार में तत्पर था, और सिकन्दर का समय सब पर विदित है।

(च) सूरत में दो शङ्कराचार्यों के मध्य में धार्मिक विवाद हुआ जिसमें द्वारिका के मन्दिर से लाकर एक ताम्र पत्र पर कलियुगी संवत् २६६३ खुदा हुआ था। अर्थात् यह पत्र ईसासे ४४३ वर्ष पूर्व लिखा गया था, जिसका समय सिकन्दर के भारत पर चढ़ाई करने से कुछ पहले सिद्ध होता है।

(अमेरिका मिशन की नूरअफ़शां अख़बार पृष्ठ ६ तारीख़ ५ मई सन् १८८७ ई०)

४४३ + १८९० + २३३७ वर्ष हुए।

२३३७ + २६६३ + ४९९०

(छ) शङ्कराचार्य के समय को उनके एक योग्य शिष्य ने इस प्रकार वर्णन किया है:—

ऋषिवीरास्तथा भूमिर्मर्त्याक्षौ वाम मेलनात्।
एकत्वेन लभेदङ्कस्ताम्राक्षस्तहि वत्सरः। १।
विश्वजिच्च पिता यस्य निर्यातश्च चिदम्बरे।
तस्य भार्याम्बिका देवी शंकरं लोक संकरम्। २।
प्रसूता सर्वलोकस्य तारणाय जगद्गुरुम्।

अर्थः—संवत् २१५७ युधिष्ठिरी में विश्वजित् पिता एवं अम्बिका देवी माता से संसार के कल्याण करने वाले शङ्कर स्वामीका जन्म हुआ जो बादमें जगद्गुरु कहलाया। इस समय युधिष्ठिरी संवत् यतः ४३३१ है, जिस में से २१५७ घटा देने

से २१७४ शेष रह जाते हैं। अतः शंकरस्वामी संवत् २१५७ में उत्पन्न हुए और ३२ वर्ष की आयु भोग कर संवत् २१८९ में परलोक वासी हुए।

इसी के अनुसार वर्त्तमान समय के प्रसिद्ध विवेचक स्वामी श्री दयानन्द जी सरस्वती लिखते हैं कि "बाईस सौ वर्ष हुए कि एक शङ्कराचार्य द्रविड़ देशोत्पन्न ब्राह्मण, ब्रह्मचर्य से व्याकरणादि सत्य शास्त्रों को पढ़ कर सोचने लगे"

(सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ २८८)

दूसरे स्थान पर लिखा है "शङ्कराचार्य के तीन सौ वर्ष पश्चात् उज्जयिनी नगरी में विक्रमादित्य राजा कुछ प्रतापी हुआ, जिसने सब राजाओं के मध्य में प्रवृत्त हुई कलह को मिटा कर शान्ति स्थापित की..........महाराजा विक्रमादित्य से लेकर शैवों का बल बढ़ता आया, लोगों ने शङ्कराचार्य को शिव का अवतार ठहराया"

(पृष्ठ २९८)

नोट—शङ्कराचार्य के चार मठ स्थापित करने के पीछे जो कोई भी उन मठों की गद्दियों पर बैठा है, वह भी जगद्गुरु शङ्कराचार्य ही कहलाया है। यही कारण है कि उसी क्रम से अब भी चार शङ्कराचार्य वर्त्तमान हैं। जिस प्रकार गुरुनानक के गद्दीदार अन्त तक अपने २ भजनों—कविताओं में गुरु नानक का नाम डालते रहे हैं न कि अपना, किन्तु जानकार जानते हैं कि कौन २ भजन गुरु नानक का अपना है और कौन २ पीछे के गद्दीदारों ने निर्माण किया है। इसी प्रकार आदि शङ्कराचार्य के पीछे जो भी गद्दीदार हुआ वह शङ्कराचार्य ही कहलाया। उन गद्दीदारों में से कई एक बौद्ध-

मत के विरुद्ध कार्य करते रहे। अन्तिम शङ्कराचार्य (उस समय का) वह हुआ जिसने मुसलमानों के भारतागमन से १०० वर्ष पूर्व बौद्धमत को भारत से निकाल सर्वथा बाहर किया। हम अपने पाठकों के स्मरण रखने के लिये निवेदन करते हैं कि पहला शङ्कराचार्य ईसासे लग भग ३०० वर्ष पूर्व हुआ। दूसरा ईसासे ५७ वर्ष पूर्व हुआ जिसका चेला वीर विक्रमादित्य का भाई एवं वैराग्य आदि तीनों शतकों का लेखक भर्तृहरि हुआ है। यह संवत् २२ विक्रमी में हुआ है। तीसरा शङ्कराचार्य सन् ४०० ईस्वी में हुआ और चौथा शङ्कराचार्य सन् ४६८ में हुआ, जो सन् ५३३ में मर गया।

भूल संशोधन इस पुस्तक के प्रथम भाग—पूर्वार्द्ध-में युधिष्ठिरी संवत् के सम्बन्ध में अनुसन्धान करते हुए हमने एक भूल* की है और वह यह कि हमने कलियुगी संवत् को ही युधिष्ठिर का सम्वत् स्वीकार कर लिया। किन्तु वस्तुतः ऐसा नहीं है। राजतरंगिणी आदि के लेखक "कल्हण" कवि प्रभृति संस्कृत के योग्य ऐतिहासिकों ने लिखा है कि कलियुग के ६६३ वर्ष व्यतीत हो चुके थे, जब कि युधिष्ठिर सिंहासनासीन हुआ, और उस समय सप्त ऋषि मण्डल मघा नक्षत्र में था, अतः इस समय युधिष्ठिरी संवत् ४२३१ हुआ और युधिष्ठिर के संवत् २१५७ में शंकराचार्य हुए।

---

* यद्यपि इस भूल का संशोधन पूर्वार्द्ध में ही किया जा सकता था पर धर्मवीर की लेख शैली में किसी प्रकार का अन्तर न आने देने की इच्छा से ही ऐसा नहीं किया गया।

अनुवादक

हिन्दी मिति गिनने की रीति स्थापित हुई जिसे कि संवत् कहते हैं 'यह संवत् ईस्वी सन् से ५७ वर्ष पूर्व आरंभ होता है' (पृ० १३७)

अब हम अपनी खोज पाठकोंके सन्मुख उपस्थित करते हैं।

यह कहना एक दम मिथ्या है कि विक्रमादित्य का संवत् अपने समय से चार पांच सौ वर्ष बाद जारी हुआ,।

१ प्रमाण-प्रसिद्ध पण्डित कालिदास ने अपने ज्योतिर्विदाभरण नामक पुस्तक में लिखा है कि:—

वर्षैसिन्धुरदर्शनाम्बरगुणै-र्यातेकलेःसम्मिते ।
मासे माधवसंज्ञिते ऽविहितो-ग्रन्थक्रियोपक्रमः ॥

अ० २२ श्लो० २१

अर्थात् कलियुगी संवत् ३०६८ महाराजा विक्रम के राजत्व काल में मैंने यह ग्रन्थ समाप्त किया। इसी पुस्तक के अन्यान्य स्थलों से विदित होता है कि उन दिनों विक्रम का संवत् २७ था। ४९९५ मेंसे ३०६८ घटा देने से शेष १९२७ रहते हैं। अतः अबतक १९२७ वर्ष इस पुस्तक को बने होगये

पण्डित तारानाथ तर्क वाचस्पति ने भी लिखा है कि कलियुगी सम्वत् ३०४२ में विक्रमी सम्वत् का आरंभ हुआ और इस पुस्तक की रचना को अब तक १९२७ वर्ष हुए*।

---

*:—देखो वाचस्पति महाशय का "वृहद्वाचस्पत्य" (पृ० १०१८)

अनुवादक।

२ प्रमाण-काठियावाड़ प्रदेशान्तर्गत जूनागढ़ के समीप एक पुराने तालाबकी खुदाई में से एक शिलालेख मिला है, जिसे कि राजा रुद्रवर्म्मा ने सुदर्शन नामक तालाब के सन्स्कार समय में लगवाया था। इस शिलालेख में सम्वत् ७२ विक्रमी खुदा हुआ पाया जाता है। यह पत्थर राजकोट की छावनी के अजायब घर में रक्खा हुआ है।

३ प्रमाण-इसी विक्रमादित्य ने रोमके एक प्राचीन महाराजा। आगस्तस को प्रीतिपत्र भेजा था, जिस में लिखा था कि "यद्यपि मैं छः सौ मण्डलों का अधीश हूँ पर अभिलाषा यही है कि आपसे समागम करूं। इस लिये आप कोई ऐसा स्थान नियत करें जो इस कार्य के लिये उपयुक्त हो तो मैं मिलूं एवं वार्त्तालाप करके कृतार्थ होऊं और जो काम-जिस में मेरी सहायता लाभदायक हो आज्ञा करें ताकि पालन करूं। लिफ़ाफ़े पर अपना नाम 'परवश' लिखा है। प्रसिद्ध ऐतिहासिक "डी० अनुएल" लिखता है कि यह पत्र यूनानी में लिखा हुआ था, और दमिश्क निवासी "निकोलिस" ने अपने नेत्रों से देखा था। उसमें उपर्युक्त महाराजाके सिंहासनस्थान का नाम उनरेन लिखा हुआ है जो उज्जैन के पश्चिम है, और। निःसन्देह राजा विक्रमादित्य के अधीन ६०० राजा थे "परवश"-"परमश" अथवा पुष शब्द उसकी जाति पँवार अथवा परमार का ही यूनानी विकार है। विक्रम वर्ष का भी इसके साथ मेलान हो, क्योंकि "आगस्टस" सन् २७ ईस्वी में सिंहासनारूढ़ था।

(सैरुल मुतक़दमीन—पृ० ६२)

ऐसा ही कालिदास के "ज्योतिर्विदाभरण" में लिखा है कि—

यो रोमदेशाधिपतिं शकेश्वरं
जित्वा गृहीत्वोज्जयिनी समायाम्।
सर्व प्रजा मङ्गलसौख्य संपद
बभूव सर्वत्रच वेदकर्म ॥ अ० २२ श्लो० १८

अर्थात् रोम देशाधिपति शक राजा को जीत कर सुन्दर उज्जयिनी नगरी का शासक हुआ, उस समय प्रजा को मंगल सुख, एवं समृद्धि प्राप्त थी और सर्वत्र वैदिक धर्म्म कर्म्म का ही पालन होता था।

विक्रमादित्य का दूसरा नाम "शकारि" है जो ऊपर के श्लोक की पुष्टि करता है।

४ प्रमाण-जामनगर प्रान्त के खयालिया राज्यान्तर्गत गेन्दा नामक ग्राम में एक और शिला लेख निकला है। इसे राजा "रुद्र सिंह" ने किसी तालाब के उपलक्ष्य में लगाया था। इस लेख में भी संवत् १०३ विक्रमी खुदा हुआ है।

५ प्रमाण-इसी तरह एक और पत्थर-जो कि काठियावाड़ प्रदेशान्तर्गत राजकोट प्रान्त के "जसरन" नामी ग्राम में मिला है· में लिखा है कि राजा रुद्रसेन के राजत्व काल, संवत् १४७ विक्रमी में, यह खुदवाया गया। यहां से दो कोस की दूरी पर एक धार है जिस पर एक बहुत बड़ा पत्थर पड़ा है। यह भी एक तलाव के उपलक्ष्य में खुदवाया गया था।

६ प्रमाण—ख़ास द्वारिका में पुस्तकालय के समीप ही एक शिला रक्खी है, जिस पर विक्रमी संवत् १३२ एवं राजा

रुद्रसेन का लेख है। यह भी किसी ऐसे ही संस्कार पर खुदवाया गया है।

७ प्रमाण—राजा विक्रमादित्य से १३५ वर्ष बाद राजा शालिवाहन हुआ है जिसने अपने नाम का शाका और सिक्का चलाया है।

८ प्रमाण—एक और शिला लेख है जिसे "सर विलियम ज़ोन्स" ने अपने लेख संग्रह जिल्द ६ पृष्ठ ३५० में उद्धृत किया है। यह लेख दिल्ली की लाट पर खुदा हुआ है जिसे हम यहां पर अविकल रूप से उद्धृत करते हैं।

अविन्ध्याद्राहि माद्रे विर्चयविन विजय आर्य्यावर्त्तं यथार्थं पुनरपि कृतवावृत्तिं संप्रति वाहमना तिलक: शाकं अस्माभि: करदं व्यधायि हिमवद्वन्ध्या संवत् श्री विक्रमादित्य १२३ वैशाखशुदिच्चमाय महामंत्री राजपुत्र श्रीसल्लक।

यह लेख वैशाख शुक्ल पक्ष संवत् १२३ विक्रमी को लिखा गया था। समीक्षक—विवेचक—लोग कहते हैं कि यह लेख शाकुम्भरी के राजा "अमलदेव" के पुत्र राजा "विशालदेव" का है, जो कि "वैशाख शुक्ल पक्ष में लिखा गया। इसका अर्थ यह है कि यह हिमाद्रि से विन्ध्याचल तक प्रसिद्धि में किसी से कम न था। आर्यावर्त्त को पुनः इसने वैसा ही बना दिया जैसा कि उसके नाम से विदित होता है। उसके मरने के अनन्तर "वाहमान तिलक" शाकुम्भरी का राजा हुआ। हमने

हिमाचल एवं विन्ध्य प्रान्त अपना कर देने वाला उपराज्य बनाया है। श्री विक्रमादित्य के १२३ संवत् वैशाख शुक्ल पक्ष, महा मंत्री राज पुत्र श्री सल्लक"।

९ प्रमाण—जामनगर प्रान्त में बाकोड़ी नामक ग्राम में एक और लिखित शिला मिली है। जिस पर विक्रम संवत् २६१ खुदा हुआ है। यह शिला भी किसी धर्मोत्सव के उपलक्ष्य में बनवाई गई थी। ये सब शिला लेख राजकोट के सरकारी पुस्तकालय में धरे हैं। जो देखना चाहे देख सकता है।

१० प्रमाण—शाहजहांपुर से २५ मील की दूरी पर बांस खेड़ा नामी एक क़स्बा है उसमें एक किसानको उसके खेतमें से एक ताम्रपत्र मिला है जिसपर संस्कृत अक्षरों में एक मोहर खुदी-लगी हुई है। यह पत्र महाराज हरिशोधन का जिसकी राज धानी थानेश्वर थी-प्रदान किया है जिसने कि विक्रमी संवत् ६६१ से ६८७ तक राज्य किया था। इस ताम्र पत्र पर उसकी दान की हुई जागीर के विषय में सनद है, जो राजा ने अपने मरने से दो वर्ष पूर्व दो विद्या सम्पन्न पण्डितों को "राम नगर" ग्राम के रूप में जो अम्बाला, ज़िला बरेली के समीप है— दी थी।

पण्डित ज्वाला प्रसाद एम०ए० ने लुधियाना-पंजाब-से सन् १८९१ ईस्वी में संवत् विषयक जो लेख ९ वीं कांग्रेस लण्डन को भेजा था। उसमें भी उन्होंने इस विषय को बड़ी खूबी से सिद्ध कोटि तक पहुँचाया है, और विरोधियों की शंकाओं को बड़ी ही योग्यता से निवारण किया है। इस लिये उचित जान पड़ता है कि उस लेख को ज्यों का त्यों यहां पर उद्धत कर दिया जावे। इस लेख के आरंभ में

कांग्रेस के मंत्री महाशय ने अपनी उक्ति दी है। जो इस प्रकार है—

"दो काग़ज़ जो पूर्वीय भाषाभिज्ञों के एक जातीय महासभा में—जोकि लण्डन में हुई—पढ़े गये।

१—संवत्

नामका एक लेख लुधियाना—भारत—निवासी पण्डित ज्वालासहाय द्वारा सम्पादित हुआ।

२—भारतीय नाटक शास्त्र

नामका दूसरा निबन्ध बड़ोदा—भारत—निवासी पण्डित एच० एच० ध्रुव द्वारा लिखा गया। ये दोनों लेख—निबन्ध जोकि भारत के दो प्रसिद्ध विद्वानों द्वारा सम्पादित हुए हैं भारत के ऐतिहासिक मामलों में एक नवीन युग उपस्थित करते हैं। ये दोनों ही लेख प्रोफैसर "ह्विटनी" के विचारों की पुष्टि करते हैं। वह यह कि जो मितियें भारत के ऐतिहासिक विषयों में यूरोपीय विद्वानों के मतानुसार नियत की गई हैं, वे सब की सब पुनः विचारणीय ठहरती है।

विक्रमादित्य के संवत् विषय में कथानक प्रसिद्ध है कि विक्रमादित्य एवं उसके नवरत्न—जिनमें कि प्रसिद्ध नाटक शकुन्तला का लेखक महाकवि कालिदास भी है, सन् ईस्वी से पूर्व प्रथम शताब्दी में हुआ है, और इस संवत् का पहला वर्ष जुलियस कैसर के ब्रिटेन देश पर चढ़ाई करने के साथ सम कालीनता रखता है।

कुछ वर्ष हुए कि यूरोप के पूर्वीय भाषाभिज्ञों की एक सभा ने तमाम कथानकों और कहानियों को एक ओर रख

कर केवल युक्तियों एवं अनुमानों द्वारा इस बात को सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि विक्रमादित्य वस्तुतः ६ ठी अथवा ७ वीं शताब्दी में हुआ है। किन्तु इस परिणाम पर पहुँचने की जो युक्त दी गई वह कभी भी विश्वास—सन्तोष दिलाने वाली नहीं हुई। वह युक्ति इस भयानक नियम पर अवलम्बितहै कि किसी पुस्तक की रचना तिथि उसके विषयों से—कि आया उनमें नवीन अथवा प्राचीन विचार अंकित हैं—ज्ञात होसकती है।

प्रोफैसर मैक्समूलर ने उपनिषदों का इतिहास लिखते समय प्रकट किया था कि यह एक बड़ा भयानक नियम है। उसने लिखा है कि जब तक हमको पूर्वार्ध एवं उत्तरार्ध की मिति के विषय में कुछ भी मालूम न हो तब तक हम कुछ भी नहीं कह सकते कि उनके लेखकों अथवा सम्पादकों के विचार क्या था कैसे थे। असम्भव बातों के लिये प्रयत्न करना एक साहस का काम तो अवश्य है, पर उसे विद्वानों का नहीं कह सकते।

वह युक्ति जो कि विक्रमादित्य के ईसा से ६०० वर्ष बाद होने में दी गई है, यह है,कि कालिदास यतः विक्रमादित्य का समकालीन था, और उसकी काव्य—लेख—शैली एक बनावटी है, इस लिये वह कुछ २ वर्त्तमान समय की सी है, और ईस्वी सन् की ७ वीं सदी कुछ अधिक पुरानी भी नहीं, इस लिये कालिदास विक्रमादित्य सहित लगभग सातवीं सदी में हुए हैं।

इस युक्ति की असारता दिखलाने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि वह जिस नियम पर अवलम्बित है, वह नियम ही

अब उठता जाता है और विद्वानों की यही सम्मति होती जाती है जैसा कि पूर्व में डाक्टर बुलर एवं डाक्टर पैटर्सन ने प्रगट की थी कि विक्रमी संवत् के विषय में भारत की सर्व सम्मत गाथायें ही यथार्थ हैं।

दूसरे निबन्ध पर भी सम्मति प्रगट की गई है और प्रोफैसर वेबर साहिब ने भी इसकी पुष्टि की है कि संवत् के वर्ष की वही दशा है जो जुलियस एवं ग्रेगिरी के पञ्चांग की है। विक्रमादित्य का उसके संवत् के प्रथम वर्ष में होना ऐसा ही ग़लत है जैसाकि जुलियस कैसर और पोप ग्रेगिरी का उसकी जंत्री के प्रथम वर्ष में होना सर्वथा निर्मूल है। किन्तु यह विचार भी युक्ति युक्त नहीं है, क्योंकि संवत् के वर्षकी दशा जुलियस एवं ग्रेगिरी की जंत्री से सर्वथा विभिन्न है। कारण यह कि ग्रेगिरी का सन् विक्रमी पञ्चाङ्ग से बहुत भिन्न है। ग्रेगिरी का सन् अथवा विक्रमादित्य का पञ्चाङ्ग कोई नहीं कहता. इस लिये यह मेलान आरंभ से ही निर्मूल है। अतएवं वे तमाम युक्तियें—जो इस पर अवलम्बित हैं—अवश्य निराधार एवं निर्मूल हैं।

प्रोफ़ैसर वेबर ने प्रगट किया है कि हमको मालूम नहीं कि सम्वत् के वर्षारंभ का क्या कारण है किन्तु उसका प्रयोजन भारत के तत्सम्बन्धी कथानकों को निर्मूल ठहराना है। पर यह ठीक न होगा, क्योंकि वही हाल ईस्वी सन् का है। क्योंकि पादरियों ने ईस्वी सन् को ईसा के जन्म से चार वर्ष पूर्व निर्धारित किया है। किन्तु इस आधारपर कोई नहीं कहता कि जुलियस कैसर, इनवर्ट अथवा शार्लमन का सम कालीन था। विक्रम का ईसा की पहली सदी से

हटा कर छटी सदी में आरंभ बतलाना भी।वैसा ही है।,,

पंडित ज्वाला प्रसाद जी लिखित मूल निबन्ध संवत्

गत कई वर्षों में पश्चिमी विद्वानों ने राजाधिराज विक्रमादित्य—जिसकी एतद्देशीय कवियों ने शिक्षा में सहायता देने के कारण बड़ी भारी प्रशंसा की है और जिसका दरबार प्रसिद्ध नवरत्नों से सदा सुशोभित रहता था—के संवत् विषय में बहुत कुछ वर्णन किया है। कुछ लोग कहते हैं कि इसने ५७ वर्ष पूर्व राज्य किया। दूसरे लोग इस बात को न मानते हुए कहते हैं कि कालिदास की काव्य शैली का समय ईसा की छटी सदी—जो कि संस्कृत भाषा के पुनरुज्जीवित होने का समय है—से पूर्व की नहीं हो सकती। इन लोगों के विचारानुसार विक्रमादित्य ने-जिसकी छत्र छाया में कालिदास जैसे कवि थे-छटी सदी में वृद्धि पाई। इस सम्मति के स्थिर करने वाले समुदाय के शिरोभूषण डाक्टर "फ़रग्यूसन" हैं। इनका मत है कि विक्रम का संवत् ५४४ ईस्वी सन् से आरंभ हुआ, हालांकि भारतीय ज्योतिष के अनुसार उक्त संवत् ईस्वी सन् से ५७ वर्ष पूर्व आरंभ हुआ था।

प्रोफ़ेसर मैक्सम्यूलर पहली सम्मति की पुष्टि करता हुआ कहता है कि "यदि हमें एक पत्थर या सिक्का भी ऐसा मिल जाय कि जिस पर सन् ५४४ ईस्वी में विक्रम संवत् अंकित हो तो सब अनुमान निर्मूल हो जाय।

डाक्टर वेबर महाशय "होल्टिज़मन" साहिब के विचार

से सहमत हैं, और वह विचार यह है कि "विक्रमादित्य की राज्यश्री को उसके संवत् के प्रथम वर्ष से सम्बद्ध करने में हम इतनी बड़ी भूल के अपराधी हुए हैं, जितने कि १३ वें पोप ग्रेगिरी के ग्रेगेरियन संवत् अथवा पञ्चाङ्ग के पहले वर्ष से, किंवा "जुलियसिज़र" जुलियन समय के प्रथम वर्ष से जोकि उसके नाम से विख्यात है, अर्थात् ईसा से ४७१३ वर्ष पूर्व लगाने में।

प्रोफ़ेसर " पैटर्सन " महाशय का कथन है कि यह मत अब स्थिर नहीं रह सकता है, और एक पर्चे में—जो उसने रायल एशियाटिक सुसायटी बम्बई में पढ़ा था—प्रकट करता है कि जिस प्रकार की पद्य रचना कालिदास की पुस्तकों में पाई जाती है, वह सन् ईस्वी की प्रथम शताब्दी में भी प्राचीन कला समझी जाती थी। पद्यरचना की चाल कम से कम सन् ७२ ईस्वी में—जब कि कन्टिस्का अथवा किंशका के समय में अश्वघोष नामक ब्राह्मण ने बौद्धमत अंगीकार करके बुद्ध की जीवनी लिखी—अवश्य वर्त्तमान थी। प्रोफ़ैसर पैटर्सन के मतानुसार पतंजलि आदि सभी कवि थे, और इसी लिये उसका विचार है कि इन कहावतों को—जो यह प्रगट करती हैं कि विक्रमादित्य एवं उसका दरबार ईसासे ५७ वर्ष पूर्व था तथा उस समय सुप्रसिद्ध कवि लोग थे—अविश्वास की दृष्टि से देखना सर्वथा अनुचित है।

डाकृर बुलहर इस परिणाम पर पहुँचा है कि यह संवत् ५४४ ईस्वी से पहले प्रचलित था, और डाकृर कीलहान इससे सहमत है। मुझे भी इन अन्तिम तीनों ऐतिहासिकों के विचारों से सहमत होने में कोई अड़चन नहीं दीखती,

बल्कि इसे कुछ और दृढ़ करने के लिये थोड़े से नोट देने उचित समझता हूँ।

ज्योतिर्विदाभरण के एक प्रसिद्ध कथानक से कालीदास विक्रमादित्य की सभा का एक प्रसिद्ध कवि पाया जाता है। इसकी पद्यरचना—कविता—एवं नाटकों से मालूम होता है वह संस्कृत भाषा के प्रत्येक अङ्ग—गुण—से परिचित था। उसकी रचनाओं में वैदिक ब्रह्मवाद, हिन्दुदर्शन, पौराणिक गाथायें एवं नक्षत्र विद्या का इतना वर्णन है कि इनका छन्दमें श्रुतबोध लिखना, ज्योतिष में ज्योतिर्विदाभरण लिखना कुछ भी आश्चर्य्य जनक नहीं है। तथाच वह स्वयं लिखता है:—

शङ्कादि पंडितवरा: कवयस्त्वनेके
ज्योतिर्विदास भवनाश्च वराह पूर्वा:।
श्रीविक्रमस्य बुधसन्सदि प्राज्ञबुद्धै:,
तैरप्यहं थो सखाकिल कालिदास:॥

इससे ऊपर के श्लोकों से सुस्पष्ट विदित होता है कि यह पुस्तक कलियुगी संवत् के ३०६८ वें वर्ष में लिखा गया था। इस समय कलि संवत् ४९९३ है। इस लेखे से इस पुस्तक को बने अबतक १९२५ वर्ष हुए। ज्योतिष विद्या के सम्बन्ध में बहुत से पुस्तकों से पता लगता है कि विक्रमादित्य कलि संवत् ३०४४ में राज सिंहासन पर बैठा और कालिदास के ज्योतिर्विदाभरण लिखने-रचने-से, २४ वर्ष पूर्व राज्य शासन आरंभ किया।

उपर्युक्त घटनाओं से गणितानुसार विस्पष्ट सिद्ध होता

है कि विक्रमादित्य का संवत् उसके सिंहासनासीन होने से आरंभ होता है।

इसके अतिरिक्त थोड़ा समय हुआ जब मुझे एक हस्त-लिखित पुस्तक जिसका नाम "गुर्जरदेशभूपावलि" था-प्राप्त हुई। इस पुस्तक में एक सौ श्लोक हैं और इसे संवत् १८६१ में "रंगविजय" नामी एक जैन विद्वान ने लिखा था।

संस्कृत विद्या का साहित्य भण्डार हम तक इतना कम पहुँचा है कि एक छोटा सा ऐतिहासिक पत्ता-पर्चा-भी वर्त्त-मान में खोज करने वालों के लिये एक बड़ा भारी प्रभु का प्रसाद है।

इस पुस्तक का लेख गुजरात देश के राजाओं का-महावीर जैन तीर्थंकर की मृत्यु से लेकर भारत में मुग़लिया राज्य के पतन तक- क्रमशः समस्त वृत्तान्त लिखता है। जो कुछ वह हिन्दू राजाओं के विषय में उल्लेख करता है इसका संक्षिप्त सार मैं यहां पर उद्धृत करता हूँ।

जिस रात को महावीर ने शरीर त्याग किया, उसी रात को पालक सिंहासन पर बैठा और उसने ६० वर्ष तक राज्य शासन किया। इसके स्थानापन्न नौनन्द हुए जिनका शासन १५५ वर्ष तक रहा। इसके अनन्तर चन्द्र गुप्त के मौर्य वंश का चक्र चला, जिसके अधिकार में गुजरात का सिंहासन लग भग १०८ वर्ष तक रहा। इसके पश्चात् "पुष्प-मित्र" "बालमित्र" "नरवाहन" के नाम मिलते हैं, जिनका शासन काल लगभग १२० वर्ष का होता है।

गिर्दभील जिसने केवल १३ पर्यन्त शासन किया वह श्रमाचार्य्य के षड्यंत्र से राज्य खोदेने वाला बताया जाता

है। इसके बाद देश ४ वर्ष तक शक लोगोंके अधिकारमें रहा, जिनको इसके अनन्तर उज्जैनाधिपति वीर विक्रमादित्य ने वहां से निकाल महावीर की मृत्यु के ४७० वर्ष बाद स्वयं शासन भार सम्हाला। उसकी सहृदयता एवं उदारभावनाओं की बहुत ही प्रशंसा की गई है। उसने एक संवत् परिचालित किया और ८६ वर्ष पर्यन्त राज्य सुख भोगा। उसके बाद उसका पुत्र राज्याधिकारी हुआ। इसके संवत् के बाद १३५ वर्ष बाद एक और शालिवाहन नामक राजा ने बल पकड़ा और उसने भी अपने नामका शाका जारी किया।

मैं उचित समझता हूँ कि विक्रमादित्य एवं शालिवाहन के विषय में लेखक की जो कुछ सम्मति है, उसे ज्यों का त्यों यहां पर उद्धृत कर दूं।

वीर मोक्षाच्च सप्तत्या युते वर्ष चतुः शते।
व्यतीते विक्रमादित्य उज्जयिन्यामभूदितः॥
सत्वसिध्यग्निवेताल प्रमुखानेक देवता।
विद्यासिद्धो मंत्र सिद्धःसिद्धःसौपर्ण पूरुषः॥
धैर्य्यादि गुण विख्यातः स्थाने स्थाने नराः परैः।
परीक्षकश्च पाषाण निघृष्ट सत्व काञ्चनः॥
सम्मन्माना इह श्रीयां (?) दानाय नृणां खिलाम्।
कृत्वा संवत्सराणां स आसीत् कर्त्ता महीतले॥
षडशीति मितं राज्यं वर्षाणां तस्य भूपतेः।
विक्रमादित्य पुत्रस्य ततो राज्यं प्रवर्त्तितम्॥

पञ्चत्रिंशद् यते भूपाद् वत्सराणां शते गते।
शालिवाहन भूपोऽभूद् वत्सरे शक कारकः॥

शालिवाहन के राजत्वकालसे ५० वर्ष बाद "बालमित्र" राजा बना और उसने सौवर्ष तक राज्य भोग किया। इस पुस्तक का लेखक संवत् २८५ विक्रमी के पश्चात् हरिमित्र, प्रियमित्र, एवं भानुमित्र; का नाम लिखता है जिन्होंने संवत् ५५७ तक राजशासन किया। इसके अनन्तर आमा भोज* का दौर दौरा रहा और इनके बाद पांच राजाओं का और राज्य रहा, जिन्होंने २४५ वर्ष तक शासन किया। चूर वंश में से "वनराज" प्रथम राजा हुआ, जो गुजरात देशको ६० वर्ष तक शासक रहा। इस समय में उसने "पटन" नामक नगर भी बसाया। इस वंश के अवशिष्ट राजा निम्न लिखित हुए हैं योग्य राज २५ वर्ष, तेमराज २६ वर्ष, भादोराज, २९ वर्ष भद्रसिंह राज २५ वर्ष, रत्नादित्य १५ वर्ष, सामन्तसिंह ७ वर्ष।

इसके अनन्तर संवत् ९९८ में मूलराज ने गुजरात का राज्य भार लिया और उसने ५५ वर्ष पर्य्यन्त राज्य शासन किया। वह निःसन्देह चालक वंश में से पहला राजा था। इसके बाद उसी वंशका राज्य शासन रहा। इस प्रकार इस वंश ने सब मिलाकर २४५ वर्ष पर्यन्त शासन किया।

इस वंश में सुविख्यात राजा कुमारपाल था, जो संवत् ११९९ से १२३० तक में हुआ है। इसके सुचतुर मंत्री "दहर" ने भृगुपुर में जिनपति का मन्दिर बनवाया। संवत् १२९८ में

---

* कदाचित् प्रसिद्ध राजा भोज से अभिप्राय है। अनुवादक

"वृहद्रौल" राज्यासन पर बैठा और दस वर्ष बाद मर गया। इसके पश्चात् गुजरात पर ६३ वर्ष पर्यन्त चार राजाओं ने राज्य किया। इनमें सब से अन्तिम राजा "कर्ण देव" था जिस ने संवत् १२६१—१२६८ तक राज्य किया। इसका स्थानापन्न "ख़िज़िर ख़ान् ख़िलजी" हुआ और तब से गुजरात देश मुसलमानों के अधिकार में चला गया।

इसके अनन्तर लेखक मुगल सम्राट् "शाह आलम" तक पहुँचता है। मालूम होता है कि लेखक ने ये तमाम वृत्तान्त इतिहासों से चुन कर उद्धृत किये हैं। यद्यपि ब्राह्मणों की पुस्तकों में इतिहास सम्बन्धी विद्या बहुत थोड़ी रह गई है। पर फिर भी कुछ वर्षों के परिश्रम से ज्ञात हुआ है कि जैन पुस्तकालयों में बहुत सी ऐतिहासिक पुस्तकें वर्तमान हैं। वर्तमान खोज करने वालों ने यह भी प्रगट किया है कि बौद्ध एवं जैन मत के आरंभ होने का समय भी एक ही है। तथा बौद्ध एवं जैन दोनों मत भिन्न २ किन्तु मिश्रित साधु वृत्ति से परिचालित रहे और यह वृत्ति ईसा से ६०० वर्ष पूर्व थी।

"गुर्जरदेश भूपावलि" के अनुसार जैन मतके २४ वें तीर्थंकर महावीर-का देहावसान ईसासे ५२७ वर्ष पूर्व हुआ था। मुझे जैन—सम्प्रदाय के एक आचार्य ने बतलाया था कि महावीर की मृत्यु महात्मा बुद्ध से १६ वर्ष बाद संघटित हुई। यदि बौद्धमत की इस मितिका—जो इस समय भी बौद्धमतावलम्बियों में प्रचलित है-कुछ विश्वास किया जाय तो बौद्धमत के संस्थापक को मरे २४३४ वर्ष बीते हैं।

राजा पालक—जिसका इस पुस्तक में वर्णन है—संभवतः

यही राजा है जिसका कि शूद्रक कवि के नाटकमें उल्लेख है। यह ईसा से २०० वर्ष पूर्व मरा था। नव नन्दों ने ईसा से ३१२ वर्ष पूर्व राज किया। गुजरात प्रदेश मौर्य वंश के अधिकार में ईसा से पूर्व ३१२—२५४ तक रहा। इसके अनन्तर पुष्पमित्र का राजत्व काल आरंभ हुआ। संभवतः यह वही "पुष्य मित्र" है कि जिसका उल्लेख पातंजल* महाभाष्य में पाया जाता है। इसके कुछ काल बाद महाराजा विक्रमादित्य के पिता का पता चलता है।

विक्रमादित्य—जिसे कि शकारि अर्थात् शक लोगों का शत्रु भी कहते हैं—उस राजा को निकाल कर जिसके अधिकार में कि देश चार वर्ष तक रहा था, गुजरात प्रदेश सहित मालवा एवं उसके आस पास के प्रान्तों का अधिपति हुआ। संभवतः इसी महान् विजय के उपलक्ष्य में उसने अपने राज्य सिंहासनारोहण के दिन नवीन संवत् परिचालित किया। विक्रमादित्य के सिंहासनासीन होने के संवत् से १२५ वर्ष पश्चात् शालिवाहन नामका एक अन्य भी शक्ति सम्पन्न शासक हुआ और इसने भी शाका नामसे नवीन संवत्की नीव डाली।

यह बात नोट करलेनी चाहिये कि विक्रम संवत् एवं शाका शालिवाहन में दोनों शक लोगों के पराजित होने के उपलक्ष्य में ही जारी किये गये थे। "गुर्जर देश भूपावलि" के

---

* यह बात ठीक नहीं है। वह पुष्पमित्र पातंजल महाभाष्य वाला नहीं है। क्योंकि महाभाष्य व्यासकृत भारत से भी पूर्व का पुस्तक है। विस्तार पूर्वक देखो इसी पुस्तकका प्रथम खण्ड।

लेखक ने भारतीय राजाओं का वृतान्त—जिन्होंने विक्रम से पूर्व एवं पश्चात् शासन किया—ऐसा क्रमबद्ध एवं विस्तृत रूपसे वर्णन किया है कि पाठक इसे अवश्य ही विश्वस्त स्वीकार करेंगे। यदि डाकृर 'फ़रग्युसन" के मतानुसार यह मान लिया जाय कि विक्रमादित्य ईसा की छटी सदी में हुआ है तो ये राजे कहां से आयेंगे जिन्होंने ईसासे ५७ वर्ष पूर्व से लेकर ८६ वर्ष बाद तक राज्य किया और शकों पर एक भारी विजय प्राप्त की। कतिपय ऐतिहासिक कल्पना कर लेंगे कि शायद विक्रमादित्य ही एक से अधिक हों। किन्तु इस हस्त लिखित पुस्तक में केवल एक ही विक्रमादित्य—जिसका दूसरा नाम शकारि था—पाया जाता है।

इसके अतिरिक्त अब यह भी पूर्ण रूपसे सिद्ध हो चुका है कि शालिवाहन का शक सन् ७८ ईस्वी में प्रारंभ हुआ और गंगा विजय वर्णन करता है कि यह विक्रम संवत् से १३५ वर्ष बाद प्रचलित हुआ। यह बात केवल इस हस्त लिखित पुस्तक से ही सिद्ध नहीं होती बल्कि उन समस्त प्राचीन पंक्तियों से भी सिद्ध होती है जोकि प्रत्येक ज्योतिष के पुस्तक में पाई जाती हैं और संस्कृत पञ्चांगों के प्रायः आरंभ में ही उल्लिखित होती हैं।

मैं ज्योतिष के इस प्रमाण से संवत् एवं शाकाके विषय में जिसकी जैन ग्रन्थों से भी पुष्टि होती है—इन्कार करने के लिये कोई कारण नहीं देखता। यह मानने के लिये—कि इस संवत् का आरंभ भी ग्रिगेरियन एवं जुलियस संवत् के अनुरूप ही हुआ है—कोई प्रमाण भारतके प्राचीन इतिहास वृत्तों में नहीं पाया जाता। वस्तुतः यह एक मुंह किकली

प्रतिज्ञा मात्र के अतिरिक्त और कुछ जान नहीं पड़ता। इसके अतिरिक्त इसका लेखक 'आम' एवं 'भोज' आदि राजाओं का भी—जिन्होंने कि संवत् ५५७ से ८०२ तक शासन किया—उल्लेख करता है। यदि आमा के राजत्वकाल को ५५ वर्ष भी कल्पना कर लिया जाय तो "भोज" अवश्य संवत् ५४२ सिंहासनारूढ़ हुआ मानना होगा और यही मति भोज के राज्यकाल के अनुसार भी जँचती है। इस बात को एक और भी हिन्दू ऐतिहासिक वर्णन करता है। इसका पत्त है कि 'भोज' 'विक्रमादित्य' से ५४२ वर्ष बाद हुआ है। यह हिन्दू ऐतिहासिक—जिसका ऊपर ज़िक्र हुआ है अवश्य उसी भोज का वर्णन करता है कि जिसने छटी सदी के आरंभ में राज्य किया और ईसा से ५७ वर्ष पूर्व से लेकर इस समय तक ५४२ वर्षों की गणना भी करता है।

अन्ततः इन उपर्युक्त घटनाओं की विद्यमानता में साहस पूर्वक कह सकता हूँ कि विक्रम संवत् के सिद्ध करने के लिये किसी पत्थर अथवा सिक्के की आवश्यकता नहीं। किन्तु इतना कह देता हूँ कि डाक्टर "ह्विटनी" पृष्ठ ३१से३६ तक एक ऐसे शिलालेख का उल्लेख करता है कि जिसमें ईसा से पूर्व सवत् ५२ के बराबर में संवत् ५ लिखा हुआ है।

पुनः एक और विद्वान् लिखता है कि "उज्जैन बहुत पुराना नगर है शास्त्र में इसका नाम 'उज्जयिनी' एवं 'अवन्ति' लिखा है, यह स्थान समुद्र तल से १७०० फ़ीट ऊंचा, १३ कत्ता ११ अंश उत्तरीय चौड़ाई ७६ कत्ता ३५ अंश पूर्वीय लम्बाई, में क्षिप्रा नदी के दक्षिणी तट पर गवालियर से २६० मील दक्षिण पश्चिम के कोने में दक्षिण की ओर झुकता हुआ बसा है।

वहां की भूमि खोदने से दूर २ तक पुराकाल की बस्ती के चिन्ह मिलते हैं। यह नगर महाराजा विक्रमादित्य के समय में अच्छी शोभा पर था।

ज्योतिषी विद्वान् अपनी लम्बाई की गणना इसी नगर से किया करते हैं। यहां पर एक मकान राजा "भर्तृहरि" की गुफ़ा के नाम से भी प्रसिद्ध है। वह किसी पुरानी हवेली का एक खण्ड—जो मट्टीके तले दब गई थी—जान पड़ता है। "महाकाल महादेव" का एक नामी मन्दिर भी यहाँ पर है। किन्तु जो मन्दिर महाराजा विक्रमादित्य के समय में बनाया गया था, वह सुलतान शमसुद्दीन ने—जो १२१० ईस्वी में गद्दी नशीन हुआ था—तोड़ डाला था। विक्रमादित्य सन् ईस्वी से ५८ वर्ष पूर्व पँवार वंश में से उज्जैन के सिंहासन पर बैठा था"।

(जामि जहान् नुमा—जिल्द २ पृ० ८२-८३ छापा लाहौर सन् १८६१ ई०)

शंकराचार्य यतः शिवके अवतार एवं शैव मत प्रवर्तक प्रसिद्ध हुए, अतः उनके समय में शैवमत दिन प्रतिदिन उन्नत होता गया। उनके समयसे रामानुज के समय तक शैवमत का प्रायः ज़ोर रहा और जो भी राजा हुए वे उसी मत के अनुयायी रहे। महाराज विक्रमादित्य एवं उसके बड़े भाई भर्तृहरि-भी इसी मत के अनुगामी थे, बल्कि यह एक प्रसिद्ध बात है कि शंकराचार्य के ही किसी शिष्य से भर्तृहरि ने उपदेश ग्रहण किया और संन्यासी हो गया। उसने बौद्धमत को यतः एक बहुत बड़ा धक्का लगाया था, इस लिये लोगों ने शंकराचार्य का अवतार प्रसिद्ध कर दिया। भर्तृहरि के शतकों

से भी यह बात कुछ कुछ झलकती है कि ऐसा हुआ होगा।

कुछ लोग—जो कि संस्कृत विद्या से सर्वथा शून्य हैं—कहते हैं कि भर्तृहरि सन् ६५० ईस्वी में मरे, इस लिये विक्रमादित्य भी ६५० में ही हुए होंगे। मगर यह बात सर्वथा मिथ्या है। यह एक ऐसी ही बात है कि जैसे कोई न्याय सूत्रों के प्रणेता गोतम मुनि को गौतम बुद्ध मान ले और धोखा खा जाय। क्योंकि जो भर्तृ सन् ६५० ईस्वी में मरा है वह बौद्धमतानुयायी अतएव नास्तिक था। किन्तु ऊपर लिखित भर्तृहरि वैदिक धर्मी अतएव आस्तिक थे। इन दोनों व्यक्तियों के मध्य में पृथिवी आकाश का अन्तर है।

तत्रा ने हस्युज्जयिन्यां श्रीमान् हर्ष पराभिधः।
एकच्छत्र चक्रवर्त्ती विक्रमादित्य राडभूत्॥
म्लेच्छोच्छेदाय वसुधां हरेरवतरिष्यतः।
शकान् विनाश्य येनादौ कार्यभारो लघुः कृतः॥

अर्थात् वहां—उज्जैन-में श्रीमान् हर्षप्रद, एक छत्रधारी, चक्रवर्त्ति राजा विक्रमादित्य था। जिसने म्लेच्छों के नाश के लिये अवतार धारण करके प्रथम शकों का नाश कर उनके भार से भूमि को हलका किया।

इसके अतिरिक्त यह भी लिखा है कि "काश्मीर के राज्य पर विक्रमादित्य ने अपने शरणागत "मातृगुप्त" का अभिषेक किया।

पुस्तक विषयक गवेषणा

वेद चार हैं, जिनको १ ऋग्वेद २ यजुर्वेद ३ सामवेद और ४ थे को अथर्ववेद कहते हैं। जिस प्रकार १ बीज २ अंकुर ३

फूल एवं ४ फल, ये चार सोपान हैं, इसी प्रकार १ ज्ञान २ कर्म ३ उपासना और ४ थे विज्ञान, ये आत्मिक उन्नति के सोपान हैं। इन में से बीज एवं ज्ञान के पुनः चार सोपान हैं। यथा १ ब्रह्मचर्य २ गृहस्थ ३ वानप्रस्थ ४ संन्यास।

जिस प्रकार मानव उन्नति के लिये चार पड़ाव हैं, इसी प्रकार चार वेद हैं। ज्ञान दृष्टि से तो वेद एकही है अर्थात् चारों का नाम केवल 'वेद' है किन्तु कक्षा एवं पदवी के पृथक्करण से एक ही वेद के चार भाग हैं। वेद संसार में सब से पुराने -प्राचीन—पुस्तक हैं। ज्ञान अथवा लेख की दृष्टि से भी वेद से प्राचीन पुस्तक संसार के पास और कोई नहीं। यही वेद आर्य-जाति के धर्म-पुस्तक हैं, और यही धर्म संसार के समस्त धर्मों से प्राचीन एवं समीचीन है। विज्ञान अथवा साइंस से धर्म का विशेष लगाव है। समस्त ऐतिहासिकों का एक स्वर से कथन है कि आर्य लोग सनातन से ही दार्शनिक विचारों के प्रेमी रहे हैं। अंकविद्या, पदार्थविद्या एवं आत्मविद्या के आदि गुरु यही हुए हैं।

वेद में एकेश्वर वाद विषयक बहुत उच्च विचार पाये जाते हैं। प्रतिमा पूजन, प्रकृति पूजन अथवा प्रतीकोपासना किंवा पशुपूजनादि का वेद में अत्यन्ताभाव है। वेद में उच्च कक्षा के सदाचार का वर्णन है। वेद का उपदेश एवं आदेश संसार भरके लिये एक रूप प्रभाव रखता है। अवतार अथवा देव पूजन का वेद में कोई संकेत नहीं है। राम, कृष्ण, वामन, परशुराम, व्यास, नृसिंह, अथवा अन्यान्य किसी अवतार या राजा किंवा ऋषि मुनि आदि की कोई कथा वेद में वर्त्तमान नहीं है। अद्वैत वाद अथवा मायावाद या नवीन वेदान्त

का सिद्धान्त भी वेद के विरुद्ध ही है। वेद सती की प्रथा का भी संचालक नहीं बल्कि विरोधी है। मद्य मांस व्यभिचार, एवं द्यूत कर्म आदि को भी वेद ने एक जैसा पाप बतलाया है, वाम मार्गादि मत भी वेद के सर्वथा विरुद्ध हैं। ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव को वेद ने तीन देव नहीं बतलाया, बल्कि स्पष्ट लिखा है कि ये तीनों गुणों की अपेक्षा से एक ही परमात्मा के नामान्तर हैं। ब्रह्मा अर्थात् सब से महान्, विष्णु= सर्वव्यापक, शिव कल्याण स्वरूप ऐसे ही परमात्मा के और भी सहस्रों नाम हैं।

आर्य लोग वेदों को ईश्वरीय ज्ञान मानते हैं जो सृष्टि के आरंभ में चार ऋषियों—अग्नि, वायु, आदित्य एवं अंगिरस द्वारा प्रकाशित किया गया। व्यास, जैमिनि, गोतम, कणाद पतंजलि एवं कपिल, ये छः प्रसिद्ध आर्य दर्शनों के निर्माता हुए हैं, जिन्होंने वेद को ईश्वरीय ज्ञान माना है। वेद स्वयं * भी ईश्वरीय ज्ञान होने का दावेदार है। उपनिषदों के तत्त्व ज्ञानी लेखकों ने भी वेद को ईश्वरीय विद्या ही स्वीकार किया है अर्थात् ये सभी मानते हैं कि सर्व नियन्ता, सर्व स्वामि, सर्व व्यापक परब्रह्म परमात्मा से ही चारों वेदों का प्रकाश एवं विकाश हुआ, और चारों वेदों का आशय ब्रह्म प्राप्ति है।

'मारिशमैन' नामी इतिहासज्ञ लिखता है कि वेदों का वा-

---

* बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत्प्रैरत नामधेयं दधानाः। यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत्प्रेणा तदेषां निहितं गुहाविः। ऋग्वेद मं० १० सू० ७१ मंत्र १

अनुवादक

स्तविक सिद्धान्त एकेश्वर वाद है, और प्राकृत तत्व एवं छोटे देवता आदि सब अलंकार ईश्वरीय शक्तियों के विकास—प्रकाश के लिये बतलाये गये हैं। यह तो सच है कि वेदों में देवताओं के नाम पाये जाते हैं किन्तु किसी देवता को उच्चता नहीं दी गई है ' यह भी कभी नहीं कहा गया कि तुम उनकी पूजा किया करो। कृष्ण एवं शिव की कथाओं का उसमें कहीं पता नहीं लगता। वस्तुतः उस समय के आरंभ में न तो कोई मूर्ति मालूम होती है और न कोई ऐसी वस्तु अथवा मंत्र ही पाया जाता है कि जिससे ऐसी पूजा का पता चले। यद्यपि यह कहा जाता है कि हिन्दू अपनी प्रथाओं एवं सम्प्रदायों को कम बदलते हैं पर तो भी आश्चर्य की बात है कि देश में जो वेदों को प्रतिष्ठा पूर्वक धर्म का महास्रोत मानते हैं, उनकी भी वैदिक प्रथायें इतनी दूर हो गई हैं कि यदि कोई वैदिक विधि से भक्ति भी करना चाहे तो वह आज कलके लोगों के अनुसार एक नास्तिक समझा जाता है।

(मारिश मैन का इतिहास पृ० १०५ सन् १८६३)

विवेचक 'कोलब्रुक' महाशय का कथन है कि "उन शूर-वीर लोगों में से—जिनका वेद में तो उल्लेख नहीं किन्तु वर्त्तमान हिन्दुओं के देवताओं में बड़ा पद है। यथा—राम, कृष्ण आदि—किसी को भी वेद में देवता रूप से वर्णन नहीं किया गया है। बल्कि उन देवताओं का भी—जिनके ये अवतार माने जाते हैं, कहीं उल्लेख नहीं पाता जाता है।

(एशियाटिक रिसर्चिज़् जि० ८ पृ० ३९५—३९७)

अध्यापक विलसन महोदय कहते हैं कि "वेद से मूर्त्तियों की प्रथा और पूजा की वस्तुओं के बाहरी चिन्हों का बनाना सिद्ध नहीं होता।"

(उनका व्याख्यान छापा ओक्स फ़ोर्ड पृ० १२)

इसी प्रकार माननीय "इन्फ़ैन्स्टन" 'सर विलियम जौन्स' एवं मौलवी 'ज़काउल्ला' आदि ने भी अपने २ इतिहासों में इस बात का उल्लेख किया है, और वे तमाम बुराइयां—जिनका खण्डन आर्य्य समाज करता है—वे सब के सब वर्णन करते हैं कि वेद में नहीं पाई जातीं। चारों वेद शब्दों में हैं जो अत्यन्त सरलता एवं प्रभाव पूर्वक गाये जा सकते हैं। वेद की संस्कृत सुतरां उच्च कक्षा की है। किसी भी ऋषि की संस्कृत रचना इनकी बराबरी नहीं कर सकती। सामवेद विशेष रूप से गान विद्या की खान है। वेदों में नाना प्रकार की शिल्पकारियों, विद्याओं एवं वैज्ञानिक सिद्धान्तों का बीज मूल-रूप में वर्णन है। तमाम विद्या विशारद ऋषिलोग वेदों को समस्त विद्याओं एवं कलाओं का भण्डार बतलाते हैं।

मण्डल, काण्ड, अनुवाक, अध्याय एवं सूक्तादि की अपेक्षा से वेदों का विभाग इस प्रकार है—

ऋग्वेद

मण्डल	अनुवादक	सूक्त	मंत्र संख्या
१	२४	१९१	१९३६ *
२	४	४३	४२९
३	५	६२	२१७
४	५	५२	५८९
५	६	८७	७२६

६	६	५	७६५
७	६	१०४	८४१
८	१०	१०३	१७२३
९	७	११४	११०८
१०	१२	१९१	१७५४
योग	योग	योग	योग
१०	८५	१०२८	१०५१८

अष्टक गणना

अष्टक	अध्याय	वर्ग	मंत्र
१	८	२६५	१३०५
२	८	२२१	१७७२
३	८	२२५	१२०९
४	८	२५०	१२८८
५	८	२३८	१२६३
६	८	३३१	१७४४
७	८	२४८	१२५६
८	८	२४६	१२८१
योग ८	योग ६४	योग २०२४	योग १०५१८

नोटः—ऋग्वेद में सब मिला कर १० मण्डल, ८ अष्टक, ६४ अध्याय, ८५ अनुवाक, १०२८ सूक्त, २०२४ वर्ग, १०५१८ मंत्र १५३७९२ शब्द; और ४३२००० अक्षर हैं।

इसके अतिरिक्त ऋग्वेद का छन्दो विभाग इस प्रकार है—

संख्या	नाम छन्द	मंत्र संख्या
१	गायत्री	२५०१
२	त्रिष्टुप्	४३०३
३	जगती	१३६३
४	अनुष्टुप्	८५५
५	उष्णिक्	३४१
६	पंक्ति	३१२
७	महाबह्नित	२५१
८	प्रगाथ वहित	१८४
९	बृहती	१८१
१०	अत्यष्टि	८४
११	प्रगाथ ककुभ्	५५
१२	शक्करी	२६
१३	अति जगती	१७

नोट—छन्दों की सर्वाङ्ग गणना अभी विचाराधीन है। इसी पुस्तक के तीसरे भाग में इस विषय पर विचार किया जायगा।

अनुवादक

*—तीसरा भाग लिखने से पूर्व ही आर्य वीर शत्रु का शिकार होगये। इस लिये नहीं कहा जा सकता कि वे इस भाग में किन २ विषयों पर प्रकाश डालते।

अनुवादक

१४	द्विपदा	१७
१५	अनाधृष्टि*	८
१६	अति शक्करी	८
१७	एक पदा	६
१८	अष्टि	६
१९	धृति	२
२०	अति धृति	२
योग २०		१०५२२

यजुर्वेद

अध्याय	मंत्र	अध्याय	मंत्र	अध्याय	मंत्र	अध्याय	मंत्र
१	३१	११	८३	२१	६१	३१	२२
२	३४	१२	११७	२२	३४	३२	१६
३	६१	१३	५८	२३	६५	३३	९७
४	३७	१४	३१	२४	४०	३४	५८
५	४३	१५	६५	२५	४७	३५	२२
६	३७	१६	६६	२६	२६	३६	२४
७	४८	१७	९९	२७	४५	३७	२१
८	६३	१८	७७	२८	४६	३८	२८
९	४०	१९	९५	२९	६०	३९	१३
१०	३४	२०	९०	३०	२२	४०	१७
योग	४३०	योग	७८१	योग	४४६	योग	३१८

सर्व योग अध्याय ४० काण्ड १४ मंत्र १९७५

*—इसे किसी २ ने छन्द नहीं माना ।

इन ४० अध्यायों एवं १९७५ मंत्रों में ९०५२५ शब्द और १२३० ॐ हैं।

सन्मूलो यजुराख्य वेद विटपी
जीयात्स माध्यन्दिनी।
शाखा यत्र युगेन्द्र काण्ड १४ सहिता
यत्रास्ति सा संहिता।
यत्राध्याब्धि लता विभान्ति शरशै—
लाङ्केन्दुभिर्ऋग्दलैः।
पञ्चद्वीषु नभोऽङ्क वर्ण मधुपैः
खाऽन्यर्क ॐ गुंजितैः॥

साम वेद

(पूर्वार्चि)

अध्याय	साम	मंत्र
१	१२	११४
२	१२	११८
३	१२	११९
४	१२	११५
५	११	११९
६	५	५५
योग	६४	६४०

उत्तरार्चि

१	१	१०
२२	२२	४१४
योग	२३	४२४

सर्व योग अध्याय २६ साम ८७ मंत्र १०६४

पूर्वोत्तरौ विभजतेऽखिल साम भागौ,
समानियत्र नय नाग मितानि सान्ति।
अध्यापका नवकराः श्रुति गायकास्ते
गायन्ति वेदरस यंक (?) मिताँश्च मंत्रान्।

अथर्व वेद

काण्ड	प्रपाठक	अनुवाक	वर्ग	मंत्र
१	२	६	३५	१५३
२	२	६	३६	२०७
३	२	६	३१	२३१
४	३	८	४०	३२२
५	३	६	३१	३७६
६	३	१३	१४२	४५४
७	२	१०	११८	२८६
८	२	५	१०	२५६
६	२	५	१०	३०२

१०	२	५	१०	३५०
११	२	५	१०	३१३
१२	२	५	५	३०४
१३	१	४	४	१८८
१४	१	२	२	१३६
१५	१	२	१८	१४१
१६	१	२	६	६३
१७	१	१	१	३०
१८	२	४	४	२८३
१९	०	७	७२	४५६
२०	०	६	१४३	६६०
योग २०	३४	१११	७३१	५८४७

अथ नखमित काण्डै राजतेऽथर्व संसद्,
युग गुण वितताः प्रपाठकाश्चानुवाकाः।
अवनि विधु धरणयो भूगुणागास्तु वर्गाः
नगयुगवसु वाणास्तत्र मंत्रान् भजन्ते। ❀

*ऋग्, यजुः, साम एवं अथर्व, वेदों की मंत्र गणना में अन्यान्य वेद वेत्ताओं की गणना से अन्तर है। पर इस प्रकार का गणना सम्बन्धी मतभेद कई वर्षों से चला आरहा है। साम वेद की मंत्र सूची को समाप्त करते हुए उसी का मंत्र सूचिबोधक जो श्लोक दिया गया है। वह भी अशुद्ध प्राय है। स्वामी श्री दयानन्द जी एवं सायणादि भाष्यकारों का मंत्र गणना सम्बन्धी मत भेद भी सुव्यक्त ही है। इस लिये इस

चारो वेदोंकी मंत्र गणना इस प्रकार है—

१ ऋग्वेद में जो अग्नि पर प्रकाशित हुआ १०५१८ मंत्र हैं
२ यजुर्वेद जो वायु पर प्रगट हुआ १९७५ मंत्र हैं।
३ साम वेद जो आदित्य पर व्यक्त हुआ १०६४ मंत्र हैं।
४ अथर्व वेद जो अंगिरस पर प्रत्यक्ष हुआ ५८४७ मंत्र हैं।
सर्वयोग १९४०४ मंत्र

वेद केवल मंत्र संहिता का नाम है किसी अन्य ग्रन्थ आदि का नहीं संस्कृत में वेद के पर्याय वाची शब्द इतने पाये जाते हैं। यथाः— श्रुति, मंत्र छन्दः, ज्ञान, ऋचा, निगम, यजुः साम, अथर्व, ब्रह्म, आगम, आम्नाय एवं त्रयीविद्या आदि।

वेदों को सृष्टिकाल के आरंभ में आर्य लोग कण्ठस्थ रखते रहे हैं और इस प्रकार कण्ठस्थ करने वालों को संस्कृत में श्रोत्र एवं वेदपाठी कहते हैं प्रत्येक युग में ऐसे लोग लाखों की संख्या में होते रहे हैं और आगे भी होते रहेंगे। इसी लिये वेद प्रत्येक प्रकार के परिवर्त्तन, विक्षेप एवं निःक्षेप आदि से सुरक्षित रहे हैं। यज्ञ आदि कर्मों में ऐसे लोगों का बड़ा मान—सतकार—होता है और उनकी आजीविका के लिये सनातन से दक्षिणा की पवित्र प्रथा प्रचलित है। सोलह संस्कार—जो प्रत्येक आर्य द्विज को विशेषतया एवं यत्र तत्र शूद्र को भी सामान्यतया करने पड़ते हैं—में ऐसे कण्ठस्थ रखने वाले विद्वानों की अत्यन्त आवश्यकता होती है। गर्भाधान

विषय में जब तक विशेष गवेषणा न की जाय, तब तक यह कहना साहस मात्र ही होगा कि इन गणनाओं में अमुक गणना मिथ्या है।

अनुवादक

से लेकर मृत्यु पर्यन्त सोलह संस्कार "संस्कारविधि" नामक पुस्तक में सर्वांग वर्णित हैं, जिन पर विद्वान् लोग विशेषतया अमल करते हैं।

आर्यवर्त में लिखना कब आरंभ हुआ।

यह एक विद्या एवं इतिहास से सम्बन्ध रखने वाला प्रश्न है, और जहां तक हमें मालूम हुआ है इस प्रश्न के करने वालों में मुख्य प्रोफ़ैसर मैक्स म्युलर महाशय हैं। वे "एशियाटिक रिसर्चिज़" में लिखते हैं कि वैदिक युग में कोई लिखना नहीं जानता था, बल्कि पाणिनि के समय में भी इस कला से लोग वञ्चित ही थे" *

मैक्स म्युलर ने इस समय को चार भागों में विभक्त किया है।

१—छंदोयुग, अर्थात् वैदिक ऋचाओं का रचना काल।

---

*:— तैत्तिरीय संहिता में पाणिनि से भी हज़ारों वर्ष पूर्व व्याकरण के आदि प्रणेता "इन्द्र" का उल्लेख पाया जाता है। तथाच मूल उद्धारण यह है:—

वाग्वै पराची अव्याकृता अवदत्। ते देवा अब्रुवन्, इमां नो वाचं व्याकुरुसोऽब्रतीत वरं वृणैमह्य चैष वायाव च सह गृह्यता इति। तस्यादैन्द्रवायवः सह्यात। तामिन्द्रो मध्यतोऽवक्रम्य व्याकरोत् तस्मादियं व्याकृता वागुद्यते। तदेतद् व्याकरणस्य व्याकरणत्वम्। इस पर सायणाचार्य ने यह भाष्य लिखा है:

२ः—मंत्रयुग, अर्थात् ऋचाओं के याज्ञिक मंत्र रूपमें प्रगट होने का समय।

३ः—ब्राह्मण युग, अर्थात् वेदों के व्याख्यान रूप ब्राह्मण ग्रन्थों का रचना काल।

४ः—सूत्रयुग, अर्थात् कात्यायन प्रभृति मुनियों के सूत्र निर्माण का समय।

इतना करते हुए भी उपरान्त आप लिखते हैं कि " पुरानी बाइबिल की रचना होते समय यहूदियों में लेखन कला प्रच-

---

"अस्य पराची पुरातनी वाक् वेदरूपिणी अव्याकृता मेघस्तनितवदखण्डाकारा अविदित पद वाक्य प्रभेदा इति यावत्। तामिन्द्रो मध्यतोऽवक्रम्म-विभज्यिन्न एतावदिदं वाक्यं, वाक्ये चेतानि पदानि पदेषु. चेता प्रकृतयः एतेच प्रत्यया इत्येवमवकारणांअखण्डया वाचो विभेदनं कृत्वा इत्यादि"।

अर्थात् इस पुरातन अथवा सनातन वेदमयी अखण्डित (पद वाक्यादि भेद रहित) वाणी को सब से प्रथम इन्द्र ने धातु, प्रत्यय एवं विकरणादि भेदों से विभक्त करके व्याकरण बनाया।

ऐसी दशामें महाशय मैक्सम्युलर का यह लिखना कि पाणिनि के समय तक आर्य लोग लिखना नहीं जानते थे, ऐतिहासिक निरीक्षण, संस्कृत पाण्डित्य, और सचाई का दिन दिहाड़े खून करना है। कोई भी बुद्धिमान् मनुष्य यह सिद्ध नहीं कर सकता कि बिना अक्षर हुए ही प्रकृति प्रत्यय एवं वर्ण विन्याहि हो सकते हैं।

अनुवादक

लित थीं । अस्तु हम यह देखना चाहते हैं कि उक्त अध्यापक महाशय का लिखना कहां तक सचाई का स्पर्श करने वाला है और उसका अनुसन्धान कहां तक गवेषणापूर्ण है।

विदित हो कि उक्त अध्यापक महाशय ने पाणिनि का समय ईसा से ३५० वर्ष पूर्व निश्चित किया है, जोकि सत्य नहीं कहा जासकता। पाणिनि का वास्तविक समय इस से बहुत पहले का है । पाणिनि ने अष्टाध्यायी रची, इस पर पतंजलि ने महाभाष्य नामक विवर्ण लिखा; और उसी महात्मा ने योग दर्शन निर्माण किया, जिस पर कि व्यासजी ने भाष्य लिखा । अतएव पाणिनि अवश्य व्यास से पूर्व हुए यही सिद्ध होता है। हमने यथार्थ एवं विस्तृत अनुसंधान करके इसी पुस्तक के पूर्वार्ध एवं 'सदाक़त उसूल और तअ़लीम आर्यसमाज" नामी पुस्तक में इस बातको सर्वांग सिद्ध कर दिया है कि पाणिनि एवं पतंजलि व्यास से बहुत पूर्व हुए हैं और व्यासजी ने युधिष्ठिर के समय में वर्त्तमान थे। इन्हीं व्यास जी ने वेदान्त सूत्र एवं भारत नामी पुस्तक निर्माण किया जिसे आज तक ४३०० वर्ष व्यतीत होते हैं। व्यास के समय में लेखन कला से लोग भलीभांति परिचित थे, इस बात की उस समय में आम चाल थी। पाठशालायें खुली हुई थीं, राज दरबार में अर्ज़ियें एवं अन्यान्य काग़ज़ पत्र लिखे जाते थे। राजाओं के नाम परस्पर सम्बन्ध स्थिर रखने तथा प्रीति बढ़ाने के लिए पत्रादि लिखने की चाल थी और शिला लेख भी खुदवाये जाते थे।

जब इन तमाम बातों के लिये उचित एवं पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं तब कौन कह सकता है कि प्राचीन समय के आर्य

लोग लेखन कला नहीं जानते थे, । महाभारत के आरंभ में ही लिखा है कि जब व्यास जी भारत की रचना करने लगे तब उनको एक सुलेखक एवं शीघ्र लेखक की आवश्यकता पड़ी । तथाच गणेश नामी एक ब्राह्मण मिला जो इन दोनों कलाओं में निपुण था । व्यासजी श्लोक कहते जाते और गणेश तत्काल उन श्लोकों को लिखता जाता । वे मूल श्लोक ये हैं:—

काव्यस्य लेखनार्थाय, गणेशः स्मर्यतां मुने !
एवमाभाष्य तं ब्रह्मा, जगाम स्व निवेशनम् ॥
ततः सस्मार हेरम्ब, व्यासः सत्यवती सुतः ।
स्मृतमात्रो गणेशानो, भक्तचिन्तित कारकः ॥
तत्रा जगाम विघ्नेपो, वेद व्यासो यतः स्थितः ।
पूजितश्चोपविष्टश्च, व्यासेनोक्तस्तदानघ ! ॥
लेखको भारतस्यास्य, भव त्वं गणनायक ।
मयैव प्रोच्यमानस्य, मनसा कल्पितस्य च ॥
श्रुत्वै तत्प्राह विघ्नेशो, यदि मे लेखनी क्षणम् ।
लिखितोनावतिष्ठेत, तदास्यां लेखको ह्यम् ॥
व्यासोऽप्युवाच तन्देवं अबुध्वा मा लिख क्वाचत् ।
ओमित्युक्त्वा गणेशोऽपि, बभूवकिल लेखकः ॥
ग्रन्थग्रन्थिन्तदा चक्रे, मुनिर्गूढकुतूहलात् ।
यस्मिन् प्रतिज्ञा प्राह, मुनिर्द्वैपायनस्त्विदम् ❀

आदि पर्व अ० १

इसके अतिरिक्त महा भारत में और अनेकों स्थलों पर

❀ अर्थात्:—आप इस महत्पुस्तक के लिखने के लिये

"लिख" । धातुका प्रयोग किया गया है । इससे स्पष्ट सिद्ध है कि व्यास जी के समय में लोग लिखना जानते थे और लेखन कला का सर्व साधारण में पर्याप्त प्रचार था ।

कात्यायन* महात्मा के समय में भी लिखने की चाल थी, तथाच उन्होंने अपनी स्मृति में लिखा है कि

यत्र पञ्चत्वमापन्नो लेखकः सह साक्षिभिः

अर्थात् जहां साक्षियों सहित लेखक मर गया हो, इत्यादि पाणिनि महाराज ने स्वयं अपने धातु पाठ में स्पष्ट लिखा है

गणेश को नियत कीजिये, यह कह कर ब्रह्मा अपने वासस्थान को गये । तब व्यासने गणेश को बुलवाया और उसने आ जाने पर मान पुरस्सर बिठा कर कहा कि आप कृपा करके मेरे इस भारत नामी पुस्तक के लेखक बनें । यह सुन कर गणेश ने यह नियम स्वीकार करा कर लेखक बनना स्वीकारा कि "लिखते २ यदि मेरी लेखनी कहीं भी न रुकने पावे तब मैं लेखक बनने को प्रस्तुत हूँ । व्यास ने यह शर्त्त स्वीकार करते हुए कहा कि आप बिना मेरे बूझे कहीं भी कुछ न लिखें यह कह सुन कर दोनों ने कार्यारंभ कर दिया ।

अनुवादक

* इसी सूत्र पर कात्यायन ने वार्त्तिक लिखते हुए कहा है **यवनाल्लिप्याम्, यवनानां लिपि यवनानी** अर्थात् यवन, शब्द से लिपि अर्थ में ही आनुक, होता है जैसा कि यवनों की लिपि को "यवनानी" कहते हैं । इस "यवनानी" शब्द का अपभ्रंश ही 'यूनानी" जान पड़ता है ।

अनुवादक

कि "लिख अक्षर विन्यासे" अर्थात् लिख का प्रयोग अक्षरविन्यास—अक्षरों को अपने २ स्थान पर वाक्य क्रमानुसार रखने में किया जाता है। इसी प्रकार **अधिकृत्य कृते ग्रन्थे** अष्टाध्यायी अ० ४ पा० ३ सू० ८७ में और **इन्द्र वरुण भवशर्वरुद्रमृडहिमारण्ययव यवनमातुलाचार्याणामानुक्** । अष्टा० अ० प्रपा० १ सू० ४९ में लेखन कला का, की ओर न केवल संकेत वरन वर्णन किया है। किन्तु मैक्समूलर साहिब को जब अष्टाध्यायी के अ०४ पा० ३ सू० ११६ एवं अ०४ पा० १ सू० ४९ द्वारा यह निश्चय हो गया कि पाणिनि के समय में लेखन कला सिद्ध होती है तो कैसी निर्बल युक्ति देता है कि "यह सूत्र ही पाणिनि का नहीं* है" किन्तु आपको यह मालूम नहीं कि इससे इन्कार करना मानो पाणिनि एवं पतंजलि की सत्ता से ही इन्कार करना है। क्योंकि पतंजलि महाराज ने अपने महाभाष्य में इस सूत्र पर वार्त्तिक एवं भाष्य लिखा है। पुनः इस अधिकरण

---

* पाणिनि व्याकरण में सभी सूत्र पाणिनि के रचे हुए नहीं हैं यह बात सत्य है और निर्विवाद है। पर इतने मात्र से किसी भी सूत्र को अपने प्रतिकूल पड़ता देख बाहर का मान लेना भी बुद्धिमत्ता का परिचायक नहीं कहा जा सकता। उपर्युक्त सूत्र जिस अधिकरण या प्रकरण में आया है उस समस्त प्रकरण के देखने से सुतरां मानना पड़ता है कि यह सूत्र अवश्य पाणिनि का ही रचा हुआ है अथवा पाणिनि से भी पूर्व का रचा हुआ है।

अनुवादक

में जितने भी अबतक लेखक अथवा वाचक वैयाकरण हुए हैं, उन सबने यह सूत्र स्वीकारा है। इस सूत्र के न होने स आगे का सब सम्बन्ध टूट जाता है। इसलिये यह सूत्र अपनी सत्ता का और भी दृढ़ प्रमाण उपस्थित करता है। अस्तु। जब मैक्समूलर के बिना अन्य सभी विद्या विशारद इस विषय में एक मत हैं, तब हम उक्त महाशय की सम्मति का कोई आदर या मूल्य नहीं मान सकते, और फिर पतंजलि की बराबरी में ?

पाणिनि व्याकरण में एक और भी सूत्र है वह यह है परः सन्निकर्षः संहिता। अ० १ पा० ४ सू० १०६ अर्थात् वर्णों की अत्यन्त समीपता को संहिता कहते हैं। जब तक अक्षर भली प्रकार आपस में समीपता स्वीकार नहीं करते अथवा अत्यन्त पास २ लिखे नहीं जाते, तब तक उनकी संहिता बन ही नहीं सकती नधातुलोपआर्धधातुके, अ० १ पा०१ सू०४ अदर्शनं लोपः* अ० १ पा० १ सू० ६

* इसके अतिरिक्त अष्टाध्यायी से हज़ारों वर्ष पूर्व के निर्मित हुए वेद व्याकरण रूप प्रातिशाख्यों में भी इस प्रकार के सूत्र पाये जाते हैं। यथा:—

लोप उदः स्थास्तम्भोः सकारस्य,

अथर्व प्राति शाख्य २।१।१

अन्तस्थोष्मसु लोपः। ऋक् प्राति शाख्य ४, ५। अर्थात् 'उद्'से परे 'स्था' और स्तम्भ, के सकार का लोप हो जाता है। ऊष्मवर्णों में अन्तस्थ का लोप होजाता है।

इनका अर्थ क्रमशः यह है कि:—धात्वंश लोप करने वाले आर्ध धातुक प्रत्यय के परे रहते इक् के स्थान पर गुण * वृद्धि नहीं होते हैं। विद्यमान के अदर्शन को लोप कहते हैं। इसके अतिरिक्त मनुस्मृति में भी लिखा है कि—

वेद यदि केवल श्रोतव्य ही होता और उसके विषय में लिखने आदि की कोई प्रथा न होती तो उसके व्याकरण-प्रातिशाख्य में लोप, आगम, एवं वर्ण विकार की सार्थकता बन ही नहीं सकती थी। इसके अतिरिक्त ऋक्-यजुः, एवं साम आदि चारों वेदों के प्रातिशाख्यों में रेफ़ का नियोग एवं रेफ़ के परे रहते पूर्व वर्ण का द्वित्व विधान पाया जाता है। (ऋक् प्रा० १५। यजुः प्रा० ४-१०४ आदि) अतः वेद यदि केवल कानों का ही विषय होता और लिखने से उसका कोई सम्बन्ध न होता तो इस प्रकार के सूत्रों-नियमों के होने की कोई आवश्यकता न थी कि वेद में अमुक स्थान पर "रेफ़" का नियोग-प्रयोग होगा, अमुक वर्ण का लोप किंवा अमुक वर्ण का द्वित्व होगा।

अनुवादक

*—यह व्याकरण का विषय है। सामान्यतया इस से पाठकों का मनोरंजन न हो सकते भी उन्हें लक्ष्य की ओर ध्यान देना चाहिये, कि यदि अति प्राचीन समय में लिखने की प्रथा न होती तो वेदों के प्रातिशाख्या एवं अन्यान्य व्याकरणों में ऐसे नियमों की—जिन में कि लेखन कला का सम्बन्ध है—रचना न की जाती।

अनुवादक

बलाद्दत्तं बलाद् भुक्तं, बलाद् यच्चापि लेखितम् ।
सर्वान् बलकृतानर्थान् अकृतान् मनुरब्रवीत् ।

मनु अ० ८ श्लोक १६८

बल पूर्वक दिया गया, बलपूर्वक खिलाया गया, और बलपूर्वक (ज़बरदस्ती से) लिखाया गया, मनुके मतमें सब अनर्थ एवं अकर्त्तव्य हैं। इस श्लोक में के "यच्चापि लेखितं" पर प्रसिद्ध टीकाकार कुल्लूक भट्ट ने लिखा है।

" यल्लेखित चक्र वृद्धि पत्रादिकम्" ।

पुनः लिखा है:—

अज्ञेभ्यो ग्रन्थिनः श्रेष्ठा, ग्रन्थिभ्यो धारिणो वराः ।
धारिभ्यो ज्ञानिनः श्रेष्ठा, ज्ञानिभ्यो व्यवसायिनः ।

मनु० अ० १२ श्लोक १०३

अर्थात् अज्ञानियों से पुस्तकें रखने वाले अच्छे हैं। इन से पुस्तक पढ़ कर धारण करने वालेअच्छे होते हैं। इनसे ज्ञानी और ज्ञानियों से भी अपनी शिक्षा को काम में लाने वाले उत्तम होते हैं। कुल्लूक भट्ट ने भी इस श्लोक का ऐसा ही अर्थ किया है।

महात्मा बृहस्पति ने अक्षरों के आविष्कार होने के विषय में लिखा है कि:—

षाण्मासिकेऽपि समये, भ्रान्तिः सञ्जायते यतः ।
धात्राक्षराणिसृष्टानि, पत्रारूढान्यतः पुरा ।

अर्थात् छः मास में भी पहली बातें विस्मृत हो जाती हैं

इसी लिये पुराकाल में धाता ने अक्षरों का निर्माण किया, जो कि इससे पूर्व पत्रों पर लिखे जाते थे।

वाल्मीकीय रामायण में भी लेखन कला के सम्बन्ध में उल्लेख पाया जाता है।

ये लिखन्तीह च नरास्तेषां वासस्त्रिविष्टपे।

युद्धकांड सर्ग १२८ श्लो० १२०।

अर्थात् इसके पढ़ने, सुनने एवं लिखने वाले तमाम उच्च गति को प्राप्त होते हैं।

महात्मा याज्ञवल्क्य के ग्रन्थ में भी लिखने का ज़िक्र पाया जाता है।

प्रमाणं लिखितं भुक्तिः साक्षिणश्चेति कीर्त्तितम्।
एषामन्यं तमाभावे दिव्यान्यतमसुच्यते अ० । २ ।

अर्थात लिखित पत्र, भोग, एवं साक्षी, ये तीन प्रकार के प्रमाण होते हैं। इन में से किसी एक के अभाव में शपथ खाई या खिलाई जाती है।

महात्मा बुद्ध के समय में भी लोग लेखन कला से परिचित थे। तथाच "ललित विस्तर" में लिखा है कि बुद्ध देव ने चन्दन की लेखनी से आचार्य की आज्ञानुसार अ, आ, आदि अक्षरों का लिखना आरंभ किया।

सुयोग्य विद्वान् पंडित श्याम जी कृष्ण वर्मा ने भी इंगलिस्तान में इस विषय पर एक विद्वत्ता एवं गवेषणा पूर्ण भाषण दिया था, जो सन् १८८४ के 'लेडस्टन" में प्रकाशित हुआ था। इस व्याख्यान में वेदों से भी कुछ ऐसे प्रमाण दिये गये थे कि जिनसे लेखन-कला की प्राचीनता प्रमाणित होती था, और वेद में लेखन शिक्षा का पता मिलता था।

"रक़" यह अरबी भाषा का शब्द है। इसका अर्थ है हिरन की वह खाल जिस पर लिखा जाये। "क़ामूस"

"वर्क़" यह शब्द भी अरबी भाषा का है। इसका अर्थ, है किसी वृक्ष की छाल जो काग़ज़ के काम में आये, अथवा केवल छाल किंवा केवल काग़ज़। "ग़यासुल्लुग़ात"।

"वराक़" यह भी अरबी का ही शब्द है। इसका अर्थ है घास एवं वनस्पति की अपेक्षा से भूमि की हरियाई।

"करीमुल्लुग़ात"

क़ुरतास एवं काग़ज़ भी इन्हीं अर्थों में प्रयुक्त होता है। अफ़ग़ानी भाषा में काग़ज़ एवं वर्क़ को पांड़ी कहते हैं, और वृक्ष के पत्ते को भी "पांड़ी" ही बोलते है।

विलायती नोटों का काग़ज़ भी बड़ाही मज़बूत होता है। यह ताज़ी रुई और अलसी की छाल से बनाया जाता है। यदि इसके तख़ते को फैला कर कोई मनुष्य सपरिवार उस पर बैठ जाय तो भी न फटे।

(हिन्दोस्तान ७ सितंबर सन् १८९४ ई०)

सफ़ेद कपड़े पर लाल या किसी दूसरे रंग का मोम चढ़ा कर उस पर पुराने समयों में पुस्तक लिखे जाते थे। नमूने के लिये अब भी बीकानेर राज्य में पत्र इसी पर लिखे जाते हैं।

इंगलिस्तान के ब्रिटिश म्युज़ियम के पुस्तकालय में इस समय ईंटों, खपरैलों, कछुवा की खाल, हड्डियों, चिपटे पत्थरों, वृक्षों की छालों, पत्तों, हाथी के दान्तों, चमड़े, झिल्ली, भोजपत्र, जस्ता, लोहपत्रों, ताम्रपत्रों, एवं लकड़ी के पट्टों पर लिखे

या खुदे हुए पुस्तक एवं लेख वर्त्तमान हैं। यहां पर बाइबिल की तीन प्रतियां नारियल के पत्तों पर लिखी हुई विद्यमान हैं।

(पैसा अख़बार १ जून सन् १८९४ ई०)

प्राचीन समय के मिश्रियों ने पुस्तकों के लिये पिपरस का कागज़ निर्माण किया था। वस्तुतः इस काग़ज़ को जोकि एक वृक्ष के पत्तों से बनाया जाता था—पापर कहते थे। वहीं से यूनान निवासियों ने पेपरुस कहना आरंभ किया। अरबी भाषा में इसे "गामी" कहते थे और संभवतः यह शब्द क़बती भाषा से लिया गया है। क्योंकि वे लोग पुस्तक की जिल्द को गोम कहते हैं। नवीन अरबी में इसका नाम बरदी है। पुराकाल में तमाम देशों में इसी काग़ज़ पर पुस्तकादि लिखे जाते थे, किन्तु जब मिश्र के द्वितीय सम्राट् युमेनूस ने "पेपरुस" का बाहर जाना बन्द कर दिया तब एशियायी कोचक के परगमुस नगर में चमड़े का काग़ज़ बनना प्रारंभ हुआ और वह काग़ज़ इसी नगर के नाम से विख्यात हुआ।

इसी परगमुस को विकृत करके अंग्रेज़ी में पार्चमेण्ट कहा गया। सन् ईस्वी से एक सदी पूर्व इस चर्मपत्र का खूब रिवाज रहा था हिरोडिस ने अपने समय में चमड़े के काग़ज़ की पुस्तकों का उल्लेख किया है। यह ऐतिहासिक तो महात्मा मसीह से ५०० वर्ष पूर्व हुआ है, किन्तु प्लैनी

ने इसके आविष्कार की भित्ति ईसासे १६६ वर्ष पूर्व जमाई है।

(तहज़ीब जिल्द ६ नं० १४ पृष्ठ १६३ सन् १२६२ हि०)

लेखन विद्या की दृष्टि से भी वेद सब से प्राचीन पुस्तक है। जिन दिनों यूनान, रोम, ईरान, अरब, मिश्र, चीन, बल्कि तमाम यूरोप और अमेरिका आदि विद्या एवं विद्वानों से सर्वथा अपरिचित था; उन दिनों यहां पर विद्याभास्कर अपना चका चौन्ध कर देने वाला प्रकाश पूर्ण रूप से दिखला रहा था। इबरानियों में बाइबिल से पहले कोई पुस्तक नहीं पाया जाता किन्तु वह भी "मूसा" के समय में लिखा गया है अर्थात् ईसासे १०००—१५०० वर्ष पूर्व। किन्तु वह भी वर्तमान समय की दीर्घकाय बाइबिल नहीं बाइबिल के केवल वे दस आदेश—आज्ञायें जो बाइबिल के अपने कथनानुसार तूर के पर्वत पर लिखे गये। ये दस आदेश भी लेखनी, काग़ज़ अथवा रोशनाई से नहीं बल्कि पत्थरों के पट्टों पर ईश्वर की अंगुलियों से। इन्हीं दस आदेशों को एक वार मूसा ने तोड़ भी डाला था जो पुनः ईश्वर ने अपनी अंगुलियों से पत्थर के पट्टों पर लिखा। उसके उपरान्त कहीं २ हिरन अथवा बकरी के चमड़े पर लिखने का पता मिलता है, किन्तु फिर भी काग़ज़ का उपयोग कहीं नहीं पाया जाता। दाइनल नबी की किताब जो ईसासे ५०० वर्ष पूर्व लिखी गई थी— में भी लिखने का वर्णन पाया जाता है जो संभवतः वही चमड़े अथवा भित्तियों पर है। इन्जील में भी लिखने का उल्लेख है किन्तु किसी काग़ज़ विशेष का पता नहीं मिलता। वह भी शायद उसी चमड़े आदि पर ही होगा।

(मर्कस की इंजील का आरंभ और योहना की इंजील का अन्त)

प्राचीन यूनानी एवं मिश्री लोग पेपरस नामी वृक्ष की छाल पर ही लिखा करते थे। उपरान्त उसी वृक्ष की छाल एवं पत्तों से काग़ज़ बनाया गया, जिसे अब तक उसी वृक्ष के नाम से पेपरस कहते हैं। मिश्र के प्राचीन मीनारों पर भी पुराने अक्षरों में कुछ लिखा हुआ है और यह अब सिद्ध हो चुका है कि ये मीनार सन् ईस्वी से ४—५ हज़ार वर्ष से भी पूर्व के हैं।

करनैल आलकाट साहिब ने अपने प्रसिद्ध व्याख्यानों में विस्फुट युक्तियों से यह सिद्ध कर दिया है कि मिश्र के बसाने वाले लोग आर्यावर्त्त से ही जाकर बसे थे।

अंग्रेज़ी में पेपर मार्च मेएट, शीट, बोर्ड, बुक, लैटर, पैन, इंक, आदि नाम इन अर्थों में प्रयुक्त होते हैं। किन्तु इन सबके शब्दार्थ वही वृक्षों की छाल, हिरनों की, खाल एवं लकड़ी के तख़्ते हैं। तथाच प्रत्येक के विषय में हम विस्तृत अनुसन्धान कर के पाठकों की भेंट करते हैं।

पेपर;—फ्रांसीसी भाषा में पेपर, इटाली में पेपू, लातीनी में पेपरस इसके पर्याय वाची शब्द पाये जाते हैं। यूनानी भाषा के पेपरुस शब्द के अर्थ एक मिश्र देशीय वृक्ष के हैं, जिसके छिलके से एक प्रकार का लिखने का काग़ज़ बनाया जाता था हिन्दी में पिपरा के अर्थ तह के है। एक वह वस्तु जो बारीक तख़्तों में बनी है जिस पर कि अक्षर एवं अंक लिखे अथवा

छापे जाते हैं। पेपर का टुकड़ा भी पेपर ही कहलाता है। कोई तख़्ता छपा या लिखा हुआ, कोई लिखी हुई वस्तु, कबरों को ढाकने की वस्तु, मुलायम, हलकी, तहखाना आदि (देखो जान आगल की डिकशनरी पृ० ४९३ छापा लंडन)

पार्चमैंण्ट— यह लातीनी शब्द " परि गोमिना" है जोकि रोम के "परगोमिस नामी स्थान के नाम से प्रसिद्ध हुआ है कि वहां पर इसका आविष्कार हुआ। भेड़ या बकरी का साफ़ किया हुआ चमड़ा, तैयार किया हुआ अथवा लिखने के योग्य बनाया हुआ"

उक्त डिक्शनरी पृ० ४९५

पार्च— इसका अर्थ है सूखा, खुश्क, सुखा देना, या खुश्क कर देना। जला देना, खुरचना, अच्छी तरह सूख जाना। इसका मूल संस्कृत के " परिशुष्क " शब्द से निकला है। " परि " का अर्थ चारों ओर है, किन्तु विशेषण के साथ लगने पर इसके अर्थ बहुत अथवा अत्यन्त के हो जाते हैं। " शुष्क " शब्द वही है जोकि लातीनी में **शस्तक** अथवा **सस्तक** किंवा **शशक** है जिसके अर्थ भी "सूखा" के ही हैं। इसका मूल धातु भी **शुष्** है जिसका अर्थ भी सूखना ही है।

उक्त डिकशनरी पृ० ४९५

शीट यह आदि में सैक्सन भाषा के **सीट** से निकला है जिसके अर्थ ढकने के हैं। उपरान्त यही "साइट" हो गया। स्कॉडिन वालों ने इसे **इस्कुट** बना लिया, और इसे ही डेविश

लोगों ने हस्क्रियाड बनाया। आइसलैंड वालों ने इसे हुस्काट, गाथिक भाषा में हुस्क्रिस बनाया गया। जिसके अर्थ "किनारे" के हो गये। संस्कृत में स्कु धातु के अर्थ ढकने आदि के हैं. अर्थात् फैली हुई ढकने के समान, चौड़ा, लम्बा रुई के कपड़े का वह टुकड़ा जो बिस्तर पर बिछाया जाता है अर्थात् चद्दर, चौड़ा कागज़, कागज़ का छपा हुआ टुकड़ा तह किया हुआ, बँधा हुआ, पुस्तक के आकार का बना हुआ, पुस्तक, पुस्तिका चौड़ी पतली कोई वस्तु।

(उक्त डिक्शनरी पृ० ६३८)

बोर्ड:—इसे सैक्सिन भाषा में "बोर्ड" कहते थे, जो बाद में "बराड" हो गया जिसके अर्थ चौड़ाई, मेज़, जो चीज़ कि चौड़ी अथवा फैली हुई हो। एक लकड़ी का पतला एवं चौड़ा टुकड़ा। मेज़, खुराक, प्रीति भोजन, मेज़ के चारों ओर बैठे हुए लोग, कौन्सिल, सभा, जहाज़ का तख़्ता, फैलाव, पत्रों से ढकना।

(उक्त डिक्शनरी पृ० ६)

बुक:—इसका मूल सैक्सिन भाषा में "बाक" है, जो संभवतः बोशेन से निकला है। जिसके अर्थ हैं झुकना या तह करना। प्राचीन काल में भेड़ अथवा बकरी के चमड़े से पत्रे बनाकर इन पर लिखा करते थे। दूसरा अर्थ है कोई छपी या लिखी हुई पुस्तक, पत्रों का जमाव; पुस्तक लिखने के तख़्तों की जिल्द। (पृष्ठ ६१)

लैटर:—इसी शब्द से फ़्रैञ्च भाषा में "लिटर,, और

लैटिन में "लिट्टर,, बना है। इसके अर्थ हैं तह करना, लगाना। पुराकाल में लिखने की रीति यतः अक्षरों को (मेज़ पर मोम लगाकर प्रचलित थी, इसी लिये ये शब्द प्रयुक्त किये जाते थे। संस्कृत में इसके लिये लिप धातु आता है, जिसके अर्थ हैं मिलना या मिलाना। लिखा हुआ कोई निशान, छपा हुआ, खुदा हुआ अथवा चित्र की भांति खिंचा हुआ, जो कि मानव शब्दों ध्वनियों को प्रगट करने के लिये काम में लाया जाता है। कोई लिखी अथवा छपी हुई वस्तु; टाईप, हाथी दान्त अथवा लकड़ी के ऐसे चिन्ह जो पुस्तक आदि के छापने में काम आते हैं।

(उक्त डिक्शनरी पृ० ४०७)

राइट:—यह शब्द वस्तुतः सैक्सिन भाषा में "रेटन" था, गाथिक में "रेहतानिस" था, जिसके अर्थ लिखने के होते हैं। संस्कृत में रिदू है जिसका अर्थ काटना, खोदना, लेखनी से कागज़ पर कुछ बनाना, लकड़ी अथवा पत्थर पर कुछ खोदना, कागज़ अथवा पत्थर पर अक्षरों का बना कर दिखाना, उत्पन्न करना और लेखनी की भांति लिखना—

(उक्त डिक्शनरी पृष्ठ ८१२)

पैन:—सैक्सिन में "पिन" डैनिश में "पन" आइसलैण्ड में "पन्नी" लैटिन में "पैना" कहते हैं। इसका पुराना आकार है "पटना"। यूनानी में "प्तिउने,, और संस्कृत में इसे पत * कहते हैं इसका अर्थ है भुजाओं द्वारा उड़ना। वस्तुतः

---

* संस्कृतमें उड़ने वाले पक्षियों को "पतत्री" भी कहते हैं। इसका अभिप्राय भी यही जान पड़ता है। अनुवादक

इसके अर्थ पर * अथवा "पँख" के हैं। एक ऐसा पर जो लिखने के लिये काम में लाया जाता है। ये पर लोहे अथवा सोने के भी बनाये जाते हैं।

(उक्त डिक्शनरी पृ० ५०३)

इंक:—डच लोगों में "इकट" जर्मनों में "कार्टिंग" पुराने जर्मनों में "कार्टिकंट" स्पेनवालों में "कार्टिन्टा" और लैटिन की भाषा में "टिएटा" कहा जाता है। यह शब्द "टिङ्गो" से निकला या निकाला गया है, जिसका अर्थ है रंगना। इसी से "टिंग्चुरा" या टिङ्चर आदि शब्दों की सृष्टि हुई है। इसका अर्थ है काला रंग या पतला सा अर्क जो लिखने अथवा छापने में आता है। प्रथम २ इसका अर्थ केवल "काला" थी। जो अब प्रत्येक प्रकार की रोशनाई के लिये प्रयुक्त होने लगा है।

(पृष्ठ ३६०)

चीन देश में काग़ज़ रुई से बनाया जाता है। कुछ लोगों का यह भी मत है कि काग़ज़ सब से पहले चीन में निर्माण हुआ। चमड़े का काग़ज़ ५—६ सौ वर्ष तक रह सकता है।

अरबी भाषा में 'रक़' 'वर्क़' 'वराक़' 'अवराक़' क़रतास' किताब' कुतुब' मक्तूब, लोह' अलातोर, तस्तोर, मुरासला,

---

* भारत के किसी भाग में अब भी क़लम को "पर" ही कहते हैं; विशेषतया लोहे की क़लम को। कहीं २ चील आदि पक्षियों के परों से ही बनाई भी जाती है!

अनुवादक

रुक़अ' तहरीर, ख़त, ज़िल्द, सहीफ़ा, आदि शब्द इन्हीं अर्थों में प्रयुक्त होते हैं।

फ़ारसी में बंद, काग़ज़, नामह, उस्ता, दस्तातीर, पोस्त, चर्म, भी इन्हीं अर्थों के लिये निर्मित किये गये हैं।

अब हम आर्य्यावर्त्त के विषय में विचार करना चाहते हैं कि यहां पर लिखना कब से चला है। यहां के लोग वेद के प्रकाश होने अथवा इससे कुछ वर्ष बाद लिखना पढ़ना जान चुके थे। किन्तु जब देखा जाता है तब ज्ञात होता है कि यहां भी इसी प्रकार की वस्तुओं पर लिखना प्रारंभ हुआ। जिन पर कि अन्यत्र हुआ। हां, अन्य देशों की अपेक्षा आर्यावर्त्त में इस काम के लिये प्राकृत साधन अच्छे और बहुतायत से प्राप्त होजाते थे। भोजपत्र, ताड़पत्र, छद, पर्ण, पत्र, पलाश, दल, वर्ग, छदन, पल्लव, किसलय, विस्तार, विटप; आदि शब्द पत्र, शाख एवं छाल आदि के अर्थों में ही प्रयुक्त किये जाते हैं। इन में से कई एक पक्षियों के परों के लिये भी प्रयुक्त होते हैं।

(देखो मेदिनी कोष आदि)

ताम्र पत्र, शिलालेख, कर्गल, चर्म, कार्पास, वस्त्र, पुस्तक, ग्रन्थ, आदि नाम उन विविध वस्तुओं के हैं कि जिन पर लिखा जाता है। खाल, छाल, अलसी, तूत की छाल, रेशम, सूत, पुराने कपड़ों के चीथड़े, टाट, आदि सब चीज़ें ऐसी हैं कि जिनसे उस समय के लोग काग़ज़ बनाया करते थे। स्यालकोटी एवं कशमीरी काग़ज़ तो सर्वत्र प्रसिद्ध ही हैं, इनके अतिरिक्त भारत के और भी बहुत से नगरों में प्राचीन समय से काग़ज़ बनता आया है। इन में से स्यालकोटी;

कशमीरी एवं किशनगढ़ी अधिक नीमन और टिकाऊ होते हैं। अब तक भोजपत्र और ताड़पत्र पर भी बहुत से लिखे हुए पुस्तक मिलते हैं जिन में से कुछ तो बहुत ही प्राचीन कालके हैं।

ऋग्वेद में अध्याय विभाग के लिये एक शब्द वर्ग आता है। इसी शब्द से फ़ारसी में "वरग" बना है। पुरानी फ़ारसी में यतः 'क' और 'ग' का एक ही रूप है, इस लिये इसी वर्ग या वरग से अरबी में "वर्क़" हो गया है। जब प्राकृत पत्रों से काग़ज़ बनाया गया, तब उसका नाम 'कुरतास' हुआ। यह शब्द भी संस्कृत के "कर्पास" से बना हुआ है। संस्कृत में काग़ज़ को कर्गल कहते हैं, इसी से फ़ारसी का काग़ज़ बना है। फ़ारसी के दस्ता एवं दस्तावेज़ का अरबी में दसातीर और असातीर बना है। इसी के साथ फ़ारसी की "ओस्ता" भी संस्कृत के अवस्था अथवा व्यवस्था शब्द का विकृत रूप ही जानना चाहिये, जो फ़तवा के अर्थों में प्रयुक्त किया जाता है। संस्कृत की कथा कविता, एवं कवि आदि शब्दों से ही मिश्र के कुतबी और अरबी के कुतब आदि विकृत आकार प्रतीत होते हैं।

रामायण के किष्किन्धा काण्ड में 'कलम अर्थात् जोन्धरी के खेत का वर्णन पाया जाता है और कोष में 'लेखनी' क़लम इत्यादि लिखा है। इससे विदित होता है कि संस्कृत में क़लम किसी लिखने की वस्तु का नाम है और वह अन्यान्य वस्तुओं के साथ जोन्धरी का भी बनाया जाता है। इसी से यह भी सिद्ध होता है कि ताड़ के विना अन्य काग़ज़ों पर भी उस समय लिखा जाया करता था।

इस जगह पर हम बाइबिल के एक वाक्य की ओर भी पाठकों का ध्यान आकर्षित करना उचित समझते हैं। उसमें लिखा है कि "जब आदम और हव्वा को अक्ल आई कि हम नंगे हैं और अपने नंगेज से लजाये तो उन्होंने अंजीर के पत्तों को सीकर अपने लिये लुंगियां बनाईं।

(उत्पत्ति बाब ३ आयत ७)

आज कल के पढ़े लिखे यह सुन कर हंस देंगे कि अंजीर के पत्तों की लुंगियां! मगर भाइयो! आरम में वृक्षों के पत्तों से ही (रेशम आदि की) लुंगियां बनती हैं।

वैदिक समय की खोज

१००० वर्ष:—रामानुजाचार्य—जो वैरागियों के आदि गुरु हुए हैं-चैत्र शुक्ला ५ मी संवत् १०१० वि० को उत्पन्न हुए। उस समय की प्रणाली के अनुसार वेद एवं शास्त्र का अध्ययन किया। उपनिषद् एवं वेदान्त सूत्रों पर भाष्य लिखे जिसमें कि स्थान २ पर वेदों के प्रमाण उद्धृत किये। इससे सिद्ध है कि वेद एक हज़ार से उधर के हैं न कि इधर के।

२००० वर्ष:—महाराज विक्रमादित्य वैदिक धर्म के अनुयायी थे। उसके समय की पुस्तकों में वेद मंत्रों का प्रमाण विद्यमान है। बल्कि उस समय आयुर्वेद के चरक एवं सुश्रुत आदि पुस्तकें भी वर्त्तमान थे। उस समय ज्योतिष्य भी—जो कि वेद के अङ्गों में से एक है-अच्छी उन्नति पर थी। विक्रमादित्य को हुए २००० वर्ष के लग भग होता है। क्योंकि इस समय उसका संवत् १९५२ चल रहा है।

राजा शालिवाहन का शाका-जो इस समय १८१५ है— उसके राजत्त्वकाल में भी वेदों का खासा प्रचार था और वह स्वयं भी वैदिक मार्गानुगामी था।

राजा चन्द्रगुप्त और उनके मंत्री चाणक्य ऋषि वेदों के मानने वाले थे, जिनको हुए आज २२०० वर्ष होते हैं।

(चाणक्यनीति द्रष्टव्य है)

२०००वर्ष:—महात्मा बुद्ध—जो मसीह से ६००वर्ष के लगभग पूर्व उत्पन्न हुआ, उसने भी अपने सूत्रों में वेदों का उल्लेख किया है। (बौद्धसूत्र अध्याय १)

उस समय वाम मार्ग आरंभ हो चुका था। लोग देवताओं पर—यादृशी शीतला देवी तादृशः खर वाहनः—की उक्ति के अनुसार मद्य मांसादि वस्तुओं को भेंट चढ़ाते और उनके द्वारा स्वयं इन निषिद्ध वस्तुओं के सेवन करने वाले बनते थे। तथाच लिखा है "बुद्ध ने जब पुरोहितों को पशुओं के मांस होम करते देखा तब कहा कि तुम यह दुष्ट काम क्यों करते हो' इसे त्याग दो। ब्राह्मणों ने उत्तर दिया कि हमारे पूर्वज करते थे और शास्त्र में भी अनुकूलता पायी जाती है। तब बुद्ध ने कहा कि वेदों में जीव हिंसा का निषेध है। पुराने आर्य ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि मांस नहीं खाते थे। जब से राजा लोग भोग विलास में पड़ गये, तब से मांस खाना और मांस का हवन करना प्रचलित हुआ *"

(बुद्ध की अंग्रेज़ी जीवनी)

---

*ब्राह्मण धाम्मिक सुत्त—नामी बौद्ध पुस्तक में भी इस बात का वर्णन पाया जाता है।

.अनुवादक

राजा "धावा" एक प्रसिद्ध वेदानुयायी हुआ है, जो अत्यन्त धर्म परायण एवं अग्निहोत्री था। उसने मसीह से ८६५ वर्ष पूर्व लोहे का एक स्तम्भ ढलवा कर अपने कीर्ति-स्तम्भ के रूप में गड़वाया था। यह स्तम्भ अबतक राय पिथौरा के बुत ख़ाने देहली में वर्त्तमान है।

(बंगाल एशियाटिक जर्नल नं० ७)

राजा सेमक भी—जो बुद्धसे ५-६-सौ वर्ष पूर्व हुआ है—वेदों को ईश्वरीय-ज्ञान मानता था और वैदिक धर्म्मका दृढ़ अनुयायी था।

सौमित्र-जिसे जौन्स के कथनानुसार २६०६ वर्ष होते हैं—के राजत्व काल में भी वेद वर्त्तमान थे और उनके अनुकूल आचरण होता था।

मूसा नबी से पूर्व भारत में वैदिक धर्म्म वर्त्तमान था और लोग यथा शक्ति उस पर आचरण करते थे।

(मनुस्मृति का अंग्रेज़ी अनुवाद)

४०००वर्ष:—ज़िन्दओस्ता—जो पारसियों का चार हज़ार वर्ष से पुराना पुस्तक है—में निम्न प्रकार से वेदों का उल्लेख आता है।

होमयष्ट के अध्याय में अथर्व वेद का नाम आया है और ऐसा ही अन्यत्र भी कई स्थलों पर अंगिरस् ऋषिका वर्णन है। तथाच उसका अविकल भावार्थ यह है "कृष्णानु ने राज्याभिमान में अथर्व वेद जिसकें आरंभका मंत्र **शन्नो देवी रभिष्टय आपो भवन्तु पीतये शंयो रभि-**

स्रवन्तुन: है। अपने राज्य में बन्द कर दिया, इसलिये होमयष्ट ने उसे सिंहासन से उतार दिया"

(होमयष्टाध्याय आयत १८)

इस पर प्रोफ़ैसर "हाग" महाशय ने भी वेद को ठीक बताते हुए लिखा है "कृष्णानु का ऐसा ही वर्णन भारत के प्राचीन पुस्तकों में आया है"

(ऐतरेय ब्राह्मण ३-२६)

ऐतरेय ब्राह्मण के विषय में उपर्युक्त महाशय कहता है कि यह पुस्तक संभवतः मसीह से २०००—२४०० बर्षों के मध्य में वर्त्तमान था।

(मैडम ब्लोटिस्की कृत तहक़ीक़ात जंगलात हिन्दोस्तान पृ० २१४)

व्यास एवं जैमिनी भी—जिनको हुए किसी प्रकार ४००० वर्ष से कम नहीं हुए—अपने शास्त्रों में वेदों को ईश्वरीय ज्ञान स्वीकारते हैं। तथाच व्यास जी अपने रचे वेदान्त अ० १ पा० १ सू० ३ में लिखते हैं कि वेदों का आदि कारण होना भी ईश्वरीय सत्ता का द्यौतक * है। क्योंकि इतना सर्वांग पूर्ण वाह्य एवं आन्तरिक ज्ञानों का मूल—वीज—किसी सामान्य मनुष्य से संभव नहीं है, मनुष्ययतः अल्पज्ञ हैं। इस पर भाष्य करते हुए २२ सौ वर्ष वीता कि स्वामी शंकराचार्य ने लिखा † कि " जो निखिल विद्याओं के भण्डार एवं प्रकाश युक्त

---

* शास्त्र योनित्वात्।

† महत ऋग्वेदादेः शास्त्रस्यानेक विद्या स्थानो पवृंहितस्य प्रदीपवत् सर्वार्थावद्योतिनः सर्वज्ञ कल्पस्य योनिः कारणं ब्रह्म

एवं अर्थों के प्रकाश करने वाले सर्वज्ञ ईश्वर के ज्ञान रूप ऋक् यजुः सामाथर्व का कारण ब्रह्म है। क्योंकि ऐसे सर्वगुण निधान वेदों का सर्वज्ञ ईश्वर के बिना अन्य किसी से भी होना असंभव है। इसका हेतु यह है कि वेद सब पदार्थों को सूर्य की भांति प्रकाशित करते और सब विद्याओं का मूल हैं।

भारत में भी वेद, रामायण एवं मनुस्मृति का उल्लेख पाया जाता है; किन्तु मनु, रामायण अथवा वेद में महाभारत का वर्णन बिल्कुल नहीं पाया जाता।

भारत आदि पर्व अ० १७ श्लोक० २२

रामायण—जो महाभारत से बहुत पहले का पुस्तक है- में भी वेदों का वर्णन है। (बाल काण्ड सर्ग १५ श्लो० २)

यह हम स्पष्ट साक्षियों से सिद्ध कर चुके हैं कि रामायण ८ लाख वर्ष से पुरानी है। अतः वेद रामायण से बहुत ही प्राचीन हैं।

मनुस्मृति—जो रामायण से भी प्राचीन पुस्तक है —का रामायण में वर्णन आता है. किन्तु मनु में बिना वेद के अन्य किसी पुस्तक का उल्लेख नहीं है। एक दो स्थल तो क्या समस्त मनु श्रुतिवाद से पूरित दिखाई देती है। मनु का समय हम इसी पुस्तक के पूर्वार्ध में निर्धारित कर चुके हैं। अतः वेद मनु से भी प्राचीन तम हैं।

सूर्य सिद्धान्त में न मनु का उल्लेख है और न रामायण आदि इतर किसी ग्रन्थ का वर्णन है तथा न ही इसने किसी

नहीदृशस्य शास्त्र स्यर्ग्वेदादिलक्षणस्य सर्व गुणान्वितस्य सर्वज्ञादन्यतः संभवोऽस्ति। इत्यादि

अनुवादक

वासिष्ठ तो ७--८ सौ वर्ष से पुराना हो नहीं सकता. क्यों कि उसमें जिन सिद्धान्तों का वर्णन है, वे शङ्कराचार्य के ही किसी चेले की मनः कल्पनाओं के परिणाम भूत हैं। ऐसी ही रामतापनी एवं गोतापनी उपनिषदें हैं। जिनका कि दारा-शिकोह ने फारसी में उल्था किया था।

वर्त्तमान रामायण में सात काण्ड पाये जाते हैं। यद्यपि इस पुस्तक की भूमिका में ही स्पष्ट लिखा है कि इसमें छः काण्ड हैं। सातवां उत्तर काण्ड किसी रामायण प्रेमी ने बाद में परिशिष्ट रूप से मिलाया है। यह एक योग्य ऐतिहासिक के कथनानुसार वस्तुतः उत्तर काण्ड ही है-इसका मूल रामायण से कोई सम्बन्ध नहीं है।

दिवंगत बाबू हरिश्चन्द्र भी लिखते हैं कि "उत्तर काण्ड के ६८वें सर्ग में यह लिखा है कि उत्तर भार्गव ऋषि ने बनाया, यह भी एक आश्चर्य की बात है। इससे तो अंग्रेज़ी विद्वानों का सन्देह और भी बढ़गया है,,

(पृ० १ छापा बांकीपुर)

रामायण वस्तुतः ६ काण्डों में समाप्त हो जाती है। आदि काण्ड में रामचन्द्र जी का जन्म और अन्तिम युद्ध काण्ड में उनकी मृत्यु का समाचार मिलता है और बड़ी उत्तमता से समाप्त किया गया है। फिर मालूम नहीं उत्तर की क्या आवश्यकता समझी गई और उसे क्यों स्वीकार किया गया ?।

प्रोफैसर ग्रिफ्थ महाशय कहता है कि "रामायण सात काण्डों में विभाजित की गई है किन्तु कवित्त्व शक्ति, एवं काव्य शैली छटे काण्ड में ही समाप्त हो जाती है और यह

विश्वास करने के लिये बहुत बड़ी गुंजायश है कि सातवां काण्ड पीछे की मिलावट है।

(देखो अङ्गरेज़ी रा० की भूमिका)

रामायण के उक्त छः काण्डों का ब्यौरा इस प्रकार है—

संख्या	नाम काण्ड	सर्ग	श्लोक संख्या	क्षेपक श्लोक संख्या
१	बालकाड	०	२२५०	१५०
२	आयोध्याकांड	०	४३५०	५०
३	अरण्यकांड	०	२३५०	५०
४	किष्किन्धा कांड	०	२३५०	५०
५	सुन्दर कांड	०	२७५०	१५०
६	युद्ध कांड	०	५७३२	१३२
योग	६	०	१९७८२	५८२

यह बात सर्व प्रसिद्ध एवं बुद्धिमानों की मानी हुई बात है कि रामायण के सब मिला कर १८००० श्लोक हैं। इस लेखे के अनुसार १७८२ श्लोक अधिक अथवा प्रक्षिप्त समझने चाहियें। इसके रचना काल में रामायण के अन्तर्गत इससे अधिक और कुछ नहीं लिखा गया कि राम चन्द्र जी का जन्म चैत्र शुक्ला नवमी, पुनर्वसु नक्षत्र, कर्क लग्न, बृहस्पति एवं चन्द्रमा के संयोग में हुआ।*

(बालकाण्ड सर्ग १८ श्लोक ८-१०)

* ततो यज्ञो समाप्तेतु ऋतूनां षट् समत्ययुः!

तथाच अभीतक आर्यावर्त्त में उस दिन-रामनवमी को—हिन्दू लोग पवित्र दिन समझते और त्योहार मनाते हैं। किन्तु भारत में लिखा है कि:—

त्रेता द्वापरयोः सन्धौ रामः शस्त्र भृतांवरः।
असकृत् पार्थिवं क्षत्रं जघानामर्ष चोदितः॥

(पर्व १ अ० २)

अर्थात् त्रेता एवं द्वापर युगकी सन्धि में शस्त्र धारियों के शिरोमणि रामचन्द्र हुए जिन्होंने अत्याचारी राजाओं और दुष्टों को मार कर सत्य की रक्षा की।

कितनेक ऐतिहासिक लोग रामायण का समय इतना कम कर देते हैं कि इसे भारत से भी पीछे का बतलाने लगते हैं। किन्तु हम इसे हठ अथवा पक्षपात के बिना और क्या कह सकते हैं ? सुतरां महाभारत में राम जी का होना त्रेता एवं द्वापर की सन्धि में वर्णन किया गया है, और उदाहरण के लिये रामायण का आंशिक वर्णन भी लिखा गया है। केवल इतने मात्र में प्रसंग को समाप्त नहीं कर

ततश्च द्वादशे मासे चैत्रे नावमिके तिथौ॥ ८ ॥
नक्षत्रे ऽदिति दैवत्ये स्वोच्च संस्थेषु पञ्चसु।
ग्रहेषु कर्कटे लग्ने वाक्यता विन्दुना सह ॥ ९ ॥
प्रोद्यमाने जगन्नाथं सर्वलोक नमस्कृतम्।
कौसल्या जनमद्रामं दिव्य लक्षण संयुतम् ॥१०॥

अनुवादक

दिया गया बल्कि जहां अमांस भोजी राजाओंकी सूचीदी है वहां पर रामचन्द्र का नाम भी दिया गया है। अतएव किसी प्रकार भी ये दोनों पुस्तक सम कालीन नहीं और न रामायण भारत के बाद की रचना ही है।

पादरी "विरटली" महाशय ने लिखा है कि रामायण और रामचन्द्र का समय ईसासे ६५० वर्ष पूर्व का है"

कर्नैल टाड महाशय ने लिखा है कि "रामचन्द्र जी ईसासे ११००वर्ष पूर्व हुए हैं"

मिस्टर "ग्रोउस" नामी रामायण के पूर्व अनुवादक ने लिखा है कि मेरी सम्मति में रामचन्द्र जी ईसासे १३०० वर्ष पूर्व हुए हैं।

"वल्फ़र्ड" महाशय की भी यही सम्मति है कि रामचन्द्र जी ईसासे १३०० वर्ष पूर्व हुए।

एक और ऐतिहासिक महाशय का कथन है कि रामचन्द्र का समय ईसासे १८०० वर्ष पूर्व का है।

सरविलियम जौन्स-कहते हैं कि रामायण ईसासे २०२६ वर्ष पूर्व लिखी गई थी।

हम इसी पुस्तक के पूर्वार्धे में सिद्ध कर चुके हैं कि महाभारत का समय ४३३३ वर्ष के लगभग है, इसलिये रामायण बहुत ही अधिक पहले की है। अर्थात् रामचन्द्र जी द्वापर एवं त्रेता की सन्धि में हुए। इस लेखे से द्वापरके ८६४००० वर्ष, कलियुग के अबतक के ४६६४ वर्ष मिला कर रामचन्द्र को हुए अबतक ८६८६६४ वर्ष व्यतीत हुए।

आर्यावर्त्त के समस्त ज्योतिषी एक मत होकर कहते हैं

कि रामचन्द्र जी को हुए ८ लाख वर्ष बीत चुके हैं। यह मत केवल ज्योतिषियों का ही नहीं बल्कि वर्त्तमान कालिक रामायण के प्रसिद्ध अंग्रेज़ी अनुवादक "ग्रिफ़्थ" ने भी कहा है कि रामायण एवं एलियड जैसी पुस्तकों में हमें अपने विचार से ज्ञात होता है कि वे अत्यन्त ही प्राचीन सृष्टि से सम्बन्ध रखती हैं। जैसे हम बम्बई नगर के किसी घर में घुसें वैसेही हम इस में भी प्रवेश करते हैं। यद्यपि बहुत से रंग अबतक भी ताज़ा मालूम होते हैं और उन पर बरबादी का कोई निशान दिखाई नहीं देता जो कि हमको उस समय की याद दिलाये, किन्तु यह हमें अवश्य मालूम होता है कि न तो ये हमारे समय के हैं और न हमारे बाप दादों के समय के; बल्कि हमारे और हमारे लक्ष्य अर्थात् रामायण के मध्य में असीम समय पड़ा हुआ है"

(अंग्रेज़ी रामायण की भूमिका)

अष्टाध्यायी।

यह व्याकरण का ग्रन्थ प्रसिद्ध विद्वान् "पाणिनि" की रचना है। यह पुस्तक आदि से अन्त तक सूत्रों में रचा गया है। इसका रचना काल बहुत पुराने युग से सम्बन्ध रखता है। इस पुस्तक के नाम से ही स्पष्टहै कि यह आठ अध्याओं में विभाजित करके रचा गया है।

अ० सं०	पादसं०	सूत्र सं०	विवर्ण
१	४	३६४	समस्त अष्टाध्यायी
२	४	२६८	में ८ अध्याय, ३२ पाद

३	४	६३१	एवं ३९९६ सूत्र हैं।
४	४	६३५	
५	४	५१५	
६	४	७३६	
७	४	४३८	
८	४	३६९	
योग ८	३२	३९९३	

त्रीणि सूत्र सहस्राणि तथा नव शतानि च।
षण्णवति हि सूत्राणि पाणिनिः कृतवान् स्वयम्।

लैथ ब्रिज महाशय कहते हैं कि पाणिनि-जो संस्कृत व्याकरण में चोटी का विद्वान् हुआ है—का व्याकरण पुस्तक बहुत ही प्रसिद्ध है, और कहा जाता है कि यह बौद्ध मत के संस्थापक से कुछ पूर्व हुआ है।

(भारत का संक्षिप्त इतिहास पृ० २३७)

इन बातों का स्पष्टीकरण हम इसी पुस्तक के पूर्वार्ध में कर चुके हैं, और यह सिद्ध कर चुके हैं ऐसे सभी प्रश्न बे सिर पैर के होने से व्यर्थ ही हैं।

भास्कराचार्य्य

इस प्रसिद्ध विद्वान् के रचे हुए निम्न लिखित पुस्तक उपलब्ध होते हैं।

१ सिद्धान्त शिरोमणि २ गोलाध्याय ३ वीजगणित ४ कर्ण कौतुहल ५ लीलावती।

यह विख्यात दार्शनिक १०६० शाका के लगभग, दक्षिण देश के बदर नामी नगर में "महेश्वर" ब्राह्मण के घर उत्पन्न हुआ था। इसके विषय में "लेथब्रिज" साहिब लिखते हैं कि "ज्योतिर्विद्या में एक और भास्कराचार्य नामक महा विद्वान् १६०० ईस्वी के लगभग दक्षिण प्रान्त में बदर नामी नगर में उत्पन्न हुआ। कहते हैं कि उसने गणित विद्या का एक ऐसा गुरु निकला था जो वर्त्तमान यूरोपीय "जज़ैयात" से बहुत कुछ टक्कर खाता है। (परिशिष्ट १ पृ० २३४)

इसके रचे हुए लीलावती नामी पुस्तक का फ़ारसी अनुवाद प्रसिद्ध विद्वान् फ़ैज़ी ने अकबरशाह के राजत्वकाल में किया था। इस अनुवाद की भूमिका में फ़ैज़ी ने लिखा है कि "इस पुस्तक का रचने वाला प्रसिद्ध विद्वान् भास्कराचार्य्य है जो गणित विद्या में अपने समय अद्वितीय पण्डित था। यह महाविद्वान् दक्षिण देश के बदर नामी नगर का रहने वाला था यद्यपि इस पुस्तक की रचना मिति—रचना काल—का कोई ठीक पता नहीं है तथापि "कर्ण कुतूहल" नामक एक दूसरा पुस्तक है जिसमें नक्षत्रों के समाचार लिखे हैं। उस पुस्तक में इसके रचे जाने की मिति लिखी है कि यह पुस्तक शाका शालिवाहन के—जो उस समय भारत में यत्र तत्र सर्वत्र प्रचलित था—११०५ में लिखा अथवा समाप्त किया गया। उस वर्ष से अब तक ३२ वर्ष व्यतीत हुए हैं जोकि चान्द्रवर्ष के ४४५ के बराबर हैं। मानो सब मिला कर अबतक ३७३ वर्ष इस पुस्तक को बने हुए।

(लीलावती के फ़ारसी अनुवाद की भूमिका पृ० २ पुस्तकालय आर्य समाज मुज़फ्फर गढ़)

करण कुतूहल में भास्कराचार्य ने अपने आपको "महेश्वरात्मज" लिखा है। इससे निश्चय होता है कि इनके पिता का नाम **महेश्वर** था और पुस्तक के रचने का वर्ष ११०५ शाका है।

लीलावती नामक ग्रन्थ उसने अपनी प्रिय पुत्री के नामसे बनाया था किन्तु कुछ लोगों का मत है कि उसकी पुत्री ने स्वयं इसकी रचना की थी।

पञ्च तंत्र।

पञ्च तंत्र एवं हितोपदेश, ये दोनों ग्रन्थ राजनीति विषयक हैं। इनमें "अरजानन्द" नामी राजा का—जिसका मंत्री वररुचि था—वर्णन है।

(देखो तंत्र ४ का आरंभ)

महाराजा चन्द्रगुप्त और चाणक्य नीति का भी इसमें उल्लेख पाया जाता है।

(देखो कथा का आरंभ)

नन्द, चन्द्रगुप्त, एवं चाणक्य का समय सुस्पष्ट है। अतः यह ग्रन्थ—पञ्चतंत्र—उनके उपरान्त बनाया गया यही निश्चय किया जा सकता है। विक्रमादित्य का इसमें कोई उल्लेख नहीं पाया जाता और न किसी नवरत्नान्तर्गत विद्वान् का ज़िक्र है। इससे मालूम होता है कि यह पुस्तक विक्रमादित्य से पूर्व लिखा गया था।

ईरान देशाधिपति **नौशेरवां** की आज्ञा से ईस्वी सन् ५३१—५६९— अथवा विक्रमी संवत् ५८८—६५६ में पण्डित वर्ज़वे ने इसका पहलवी भाषामें अनुवाद कियाथा। तदनन्तर

संसार की लगभग सभी प्रसिद्ध एवं प्रचलित भाषाओं में इस का अनुवाद किया गया। इस पुस्तकके लेखक का नाम "विष्णु शर्मा" है जो राजा "अमरशक्ति" उपनामक सुदर्शन के राजत्व काल में हुआ है। राजा अमर शक्ति दक्षिण देश के "महला पुर" नामी नगर का राजा था। इसी पुस्तक का सार भूत वर्णन हितोपदेश में किया गया है। शाहनामा में फरदूसी ने भी इसका उल्लेख किया है।

मुद्रा राक्षस।

इसमें उस राज्य क्रान्ति का वर्णन है किजिसमें मगध देश के नन्दवंशके स्थान चन्द्रगुप्तको राज्यश्री प्राप्त हुई है। पहले मंत्री का—जो नन्द को मार कर स्वयं राजा बनना चाहता था चाणक्य की चालों से घोर पराजय हुआ और चन्द्रगुप्त राज सिंहासन पर विराजा। प्रसिद्ध विद्वान् "विसाशदत्त ने" चाणक्य के मनोरञ्जनार्थ इसकी रचना की थी। इसका रचना काल ईसासे लगभग ३०० वर्ष पूर्व माना जाता है! चन्द्र गुप्त का राज्यारम्भ एवं इस पुस्तक का रचनाकाल प्रायः एक ही है।

(भारत इतिहास परिशिष्ट प्रथम पृष्ठ २३७)

चन्द्रगुप्त ने २४ वर्ष अर्थात् ईसा से २९१ वर्ष पूर्व तक बड़ी सज धज के साथ राज्यशासन किया।

(भारत का संक्षिप्त इतिहास पृ० ३६)

ग्रहलाघव।

यह ग्रन्थ ज्योतिष विषयक है। इसकी रचना १४४२ शाका शालिवाहन में हुई है।

ताजक ।

यह पुस्तक पण्डित नीलकन्ठ नामी प्रसिद्ध विद्वान् का बनाया हुआ है जो गणित एवं फलित दोनों शाखाओं से सम्बन्ध रखता है। इसकी रचना १५०६ शाका शालिवाहन में हुई है।

मुहूर्त्त चिन्तामणि ।

यह ग्रन्थ पण्डित गणेशदेव की रचना है। यह और इनहीं के रचे 'जातकाभरण" "जातकालङ्कार" नामीपुस्तक लगभग एक ही समय के हैं। इसका लेखक पण्डित नीलकंठ का छोटा भाई था। इनमें से मूहूर्त्तचिन्तामणि शाका १५२२ एवं जातकालङ्कार शाका १५३५ में रचे गये थे।

दिन और रात की अटकल लगाने का नियम

जिस समय सूर्योदय हो, उसे यदि दुगुना किया जाय तो गुणा का फल रात का परिमाण निकलेगा। जिस समय सूर्यास्त हो उसे यदि दो से गुणा किया जाय तो गुणा का फल दिन का परिमाण होगा; यथा सूर्य यदि ५ बजे उदय हो तो रातका परिमाण १० घन्टा होगा। सूर्य यदि ६½ बजे अस्त होतो दिनका परिमाण १३ घन्टा होगा।

— + —

विक्रमी संवत् से पूर्व की ऐतिहासिक

घटनाओं का लगातार समय

निरूपण ।

संख्या	नाम घटना	विक्रम से पूर्व	
१	पराशर सूत्रों का समय	२४५०	"
२	महाराजा युधिष्ठिर का समय	२३८०	"
३	व्यास मुनि का समय	२३८०	"
४	श्री कृष्ण जी का समय	२३८०	"
५	जैमिनि पुत्र परीक्षित का समय	२३४३	"
६	ज़रदश्त नबी का समय	२३४४	"
७	गोनर्द-काश्मीर का प्रथम राजा	२३२०	"
८	नैनोस के राजा की स्त्री ने भारत पर आक्रमण किया········	२०००	"
९	मिश्र के राजा-स्टाटस् ने भारत पर आक्रमण किया और गंगा तट तक आया	१३०८	"
१०	चौहान क्षत्रियों के पुरुषा का जन्म	६५०	"
११	रोमक सिद्धान्त लिखा गया	६५२	"
१२	दारा का युद्ध	५००	"
१३	शाक्य मुनि गौतम बुद्ध का जन्म	५००	"
१४	नन्द वंश का प्रारम्भ	४७५	"
१५	महाराजा गोहा का विवाह	४७५	"

१६	सम्राट् सिकन्दर की चढ़ाई	२७५	"
१७	महाराजा चन्द्र गुप्त	२६८	"
१८	महाराजा अशोक*	२६३	"
१९	शंकराचार्य का प्रकाश-बौद्ध मत का ह्रास	२२३	"
२०	भर्तृहरि	५०	"

संख्या	घटना जो विक्रम के पश्चात् घटित हुई	संवत् विक्रमी में	
१	विक्रम का सिंहासनारोहण	१	सं० वि०
२	द्वितीय शंकराचार्य्य	२२	"
३	ईसा मसीह	५३	"
४	शाका शालिवाहन का आरंभ	१३५	"
५	बल्लभी राज्य का आरंभ	२०१	"
६	अरदेशर ईरान का राजा हुआ	२८३	"
७	अन्ध्रों का राज्यारम्भ	३३६	"
८	राजा विक्रम पाल	४४१	"
९	तीसरा शंकराचार्य्य	४५७	"
१०	आर्य्य भट्ट	५००	"

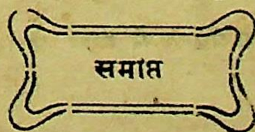
*— करएड के पत्थर का ढला हुआ राजा अशोक का मीनार जो इस समय फ़ीरोज़ शाह की लाट के नाम से प्रसिद्ध है—ईसा से २५८ वर्ष पूर्व अशोक द्वारा ही बनवाया गया था।

(बंगाल एशियाटिक जरनल नं० ७ पृ० ६३०)

११	राजा हुल्काचन्द्र	५१६	,,
१२	राजा भोज	.४१	,,
१३	वल्लभी राज्य का अन्त	५६१	,,
१४	चौथा शंकराचार्य्य	५८२	,,
१५	नौशेरवां जिसके राजत्वकाल में पंच तंत्र की रचना हुई	५८८	,,
१६	ब्रह्मगुप्त	६०७	,,
१७	पांचवां शंकराचार्य्य	६४७	,,
१८	अन्ध्र वंश का अन्त	७८६	,,
१९	जावर राजाओं का समय	८०१	,,
२०	छटा शंकराचार्य्य	८४५	,,
२१	भट्ट रेतल	८४७	
२२	जनीसाल	९०७	
२३	सुसेलकनों का शासन	९८८	
२४	रामानुज का समय	१०१०	
२५	आनन्दपाल	१०६५	
२६	महमूद ग़ज़नवी का भारत पर आक्रमण	१०५६	
२७	महमूद की मृत्यु	१०८७	
२८	अलबरूनी—अबूरिहां	११००	
२९	भास्कराचार्य्य	११००	
३०	काश्मीर नरेश राजा हर्ष	१११३	
३१	महाराज पृथिवी राज का समय	११९१	
३२	राजाबुक्कस्य एवं सायणाचार्य का समय	१४००	

३३	चैतन्य का समय	१४८५
३४	रामानन्द स्वामी*	१५००
३५	कबीर का समय	१५४०
३६	वल्लभ स्वामी का समय	१५४०
३७	बाबा नानक का समय	१५४०
३८	दादू जी का समय	१६५७
३९	रामायण प्रणेता गोस्वामी तुलसी दास	१६८०
४०	औरंगज़ेब सन् १६५८ ई० से १७०७ ई० तक	१७००
४१	गुरुगोविन्द सिंह जी का समय	१७ वीं सदी
४२	छत्रपति शिवाजी का जन्म समय	१६२७ वि०
४३	महाराजा रणजीत सिंह का जन्म २ नवम्बर	१७८० ईस्वी
४४	ब्रह्म समाज संस्थापक राजाराम मोहन राय	१८८६ वि०
४५	नारायण स्वामी-सहजानन्दी मत का आरंभ	१८८६ वि०
४६	बावा ब्रह्मचारी का समय	१९०० वि०
४७	स्वामी दयानन्द अथवा आर्य समाज की संस्थापना	१९३२ वि०

*ये वैरागियों के आदि आचार्य्य हुए हैं।



आदर्श जीवन माला ।

इस नाम की एक माला स्टार प्रेस प्रयाग से निकलनी आरम्भ हुई है। इस माला में संसार के आदर्श महात्माओं के जीवन चरित्र होंगे। जिनकी गणना २०० या ३०० से कम न होगी जो महाशय इस माला के स्थाई ग्राहक होना चाहें वे ॥) फीस भेज कर अपना नाम ग्राहक श्रेणी में लिखाले पुस्तक छपते ही उनकी सेवामें वी० पी० द्वारा भेजी जावेगी।

ग्राहक बनने में शीघ्रता कीजिये।

छपे हुए जीवन चरित्र

१—महात्मा हंसराज ।)
२—पं० गुरुदत्त विद्यार्थी ।)
३—आदर्श महिलाएं ॥)
४—फ्लोरेन्स नाइटिंगेल =)
५—पं० लेख राम ।)
६—डा० सुब्रह्मण्य अय्यर ।)
७—महात्मा गांधी ।)
८—स्वामी दयानन्द ।)
९—सरकर्नल प्रताप सिंह ।)

वे जीवन चरित्र जो छप रहे हैं

१—ला० लाजपतराय ।)
२—महात्मा तिलक ।)
३—स्वामी विवेकानन्द ।)
४—पं० मदनमोहन मालवीय ।)
६—श्रीमती एनी बेसैंन्ट ।)
७—गुरु गोविन्द सिंह ।)
८—नैपोलियनबोनापार्ट ।)

मिलने का पता—स्टार बुक डिपो, इलाहाबाद।

के० सी० भल्ला के प्रबन्ध से स्टार प्रेस प्रयाग में छपा।

स्टार बुक डिपो प्रयाग की अनोखी और सर्वोपयोगी हिन्दी पुस्तकें।

१—अर्थ शास्त्र-धन विद्या ले० प्रो० बालकृष्ण एम० ए० १॥)
२—स्वराज्य " " १)
३—वेदोक्त राज्य " " १)
४—बालोपदेश ले० श्रीयुत पं० रामनारायणजी मिश्र बी० ए० ।)
५—ऋतुचर्या ले० श्रीयुत पं० केशवदेवजी शास्त्री एम० डी० १)
६—धर्म शिक्षा (प्रथम भाग) " " ।
७—धर्म शिक्षा (द्वितीय भाग) " " ।=
८—उपदेश माला (प्रथम भाग) " "
९—वकील हेवानात (उर्दू) ।)
१०—ईसाई सिद्धान्त दर्पण ।=)
११—आर्य्य समाज क्या है -)
१२—फलाहार तथा मांस भक्षण -)
१३—स्वराज्य और हमारी योग्यता
१४—ईश्वरीय, ज्ञान वेद १॥)
१५—फ्लारेंस नाइटिंगेल =)
१६—वीर राजपूत नाटक ॥)
१७—वैदिक स्वराज्य =)
१८—आर्य्य जाति संगठन =)
१९—भीमसेन और आर्य्य समाज
२०—आर्य्यों की वैज्ञानिक उन्नति ।)
२१—मोक्ष प्राप्ति के साधन (महात्मा हंसराज का व्याख्यान) -)
२२—कुछ उपयोगी बातें ले० बा० बसन्त लाल गुप्त =)
२३—पं० गुरुदत्त विद्यार्थी ले० पं० सत्यव्रत शर्मा द्विवेदी
२४—संध्या (अर्थ सहित) ले० स्वामी सत्य प्रकाश ।)

पता—स्टार बुक डिपो, प्रयाग।